केरल ज्योति

अप्रैल 2025

ISSN 2320-9976
UGC Care - List

ISO 9001: 2015

केरल हिंदी प्रचार सभा

ADGP श्रीजित आई पी एस आचार्य B.Ed. कोर्स के सालाना समारोह का उद्घाटन कर रहे हैं।

श्रीजित जी भाषण कर करे हैं।

सभा के मंत्री स्वागत भाषण कर रहे हैं।

श्रोतागण

केरलज्योति

केरल हिंदी प्रचार सभा की मुख पत्रिका

(केंद्रीय हिंदी निदेशालय की वित्तीय सहायता से प्रकाशित)

केरल हिंदी प्रचार सभा के संस्थापक

स्व. के वासुदेवन पिल्लै

पूर्व समीक्षा समिति

प्रो (डॉ) एन रवींद्रनाथ
डॉ के एम मालती
प्रो(डॉ) आर जयचन्द्रन
प्रो (डॉ) जयश्री एस आर

परामर्श मंडल

डॉ तंकमणि अम्मा एस
डॉ लता पी
डॉ रामचन्द्रन नायर जे

प्रबन्ध संपादक

गोपकुमार एस (अध्यक्ष)

मुख्य संपादक

प्रो डी तंकप्पन नायर

संपादक

डॉ. एम एस विनयचंद्रन
डॉ. रंजीत रविशैलम

संपादकीय मंडल

अधिवक्ता मधु बी (मंत्री)
सदानन्दन जी
मुरलीधरन पी पी
प्रो रमणी वी एन
चन्द्रिका कुमारी एस
एल्सी सामुवल
आनन्द कुमार आर एल
प्रभन जे एस
डॉ नेलसन डी

सूचना : लेखकों द्वारा प्रकट किये गये मत उनके अपने हैं। उनसे संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं।

पुष्प : 62 दल : 1 अंक: **अप्रैल 2025**

अनुक्रमणिका

संपादकीय 5

श्रीनारायणगुरुचरित महाकाव्य - **प्रो.डी.तंकप्पन नायर** 6

प्रौद्योगिकी युग में हिंदी का बदलता स्वरूप - **डॉ सविता प्रमोद** 9

हिंदी यात्रा साहित्य एक विचार - **डॉ धन्या एस** 12

संजीव कृत 'जंगल जहाँ शुरु होता है' में आदिवासी जनजीवन
अंजना ए एस 14

आदिवासी स्त्री के अस्तिमा संकट की परख करती कहानियाँ
डॉ विजी वी 16

किन्नर समुदाय : संघर्ष, पहचान और उपलब्धियों का काव्य विमर्श
डॉ गोपकुमार जी 20

ललक (कहानी) - **कीर्ति अनिल** 25

फिर सृजन को (कविता) **सुबोध श्रीवास्तव** 26

मैथिल कोकिल विद्यापति के काव्य में मिथिला
लोकचित्रकला का निरूपण - **डॉ गजेंद्र भारद्वाज** 27

सुधा अरोडा की कहानी 'तीसरी बेटी के नाम ये ठण्डे, सूखे, बेजान शब्द' में नारी संघर्ष - **ग्रीष्मा मोहन** 33

प्रश्नोत्तरी - **डॉ.रंजीत रविशैलम** 35

समकालीन संदर्भ में भारतीयता - **रोषिनी एस** 36

हाशिएकृत समाज की अभिव्यक्ति - 'अंकुर' के विशेष संदर्भ में
डॉ राजन टी के 38

धार्मिक आईने में भारतेंदु युगीन व्यंग्य - **डॉ अब्दुल लतीफ़** 42

देवयानम् (आत्मकथा)
मूल : डॉ.वी.एस. शर्मा, अनुवाद : प्रो. के.एन.ओमना 47

ज़िंदगी : एक लोलक (आत्मकथा)
मूल : श्रीकुमारन तंपी अनुवाद : डॉ.पी.जे.शिवकुमार 49

*मुखचित्र : **केरल के राज्यपाल श्री राजेंद्र विश्वनाथ अरलेकर***

लेखकों से निवेदनः

• हिन्दी और इतर भारतीय भाषाएँ, साहित्य, संस्कृति आदि पर लिखी गयी उच्च स्तरीय मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ आमंत्रित हैं। • भाषा, साहित्य, संस्कृति आदि पर आयोजित समारोहों, चर्चाओं, संगोष्ठियों के समाचारों का भी स्वागत है। इन समाचारों को प्रस्तुत करनेवाले का नाम और पूरा पता भी लिख भेजें। • भारतीय भाषाओं से अनूदित कविता, कहानी भी भेजें। उनके साथ मूल लेखक से प्राप्त अधिकार पत्र भी प्रेषित करें। • प्राकाशनार्थ रचनाएँ साफ-साफ अक्षरों में लिखकर अथवा टंकित कर या **डी.टी.पी.** करके **सी.डी.** में भेजें। कृपया कार्बन प्रति न भेजें। • स्वीकृत रचनाएँ यथासमय पत्रिका में प्रकाशित की जाएँगी। • आप ई-मेल द्वारा भी अपनी रचनाएँ भेज सकते हैं। ई-मेल में Microsoft Word or Pagemaker फाइल में भेजिए। ई-मेल आईडी :khpsabha12@gmail.com • अपनी रचना के साथ पूरा पता (जिला, राज्य और पिनकोड सहित), लघु परिचय और फोटो भी भेजें।

संपादक, 'केरल ज्योति', केरल हिन्दी प्रचार सभा,
तिरुवनन्तपुरम-695 014

सभा का मुख्यालय और उसकी गतिविधियाँ

केरल की राजधानी तिरुवनंतपुरम के वषुतक्काड़ में सभा का मुख्यालय स्थित है। सभा के मुख्य परिसर में सभा के संस्थापक मंत्री की पावन स्मृति में श्री वासुदेवन पिल्लै स्मारक हिंदी ग्रंथालय, स्नातकोत्तर अध्ययन अनुसंधान केंद्र, साहित्याचार्य महाविद्यालय, केंद्रीय हिंदी महाविद्यालय, टंकण और आशुलिपि संस्थान, परीक्षा भवन, राष्ट्रवाणी मुद्रणालय, राष्ट्रज्योति पब्लिशेर्स के प्रकाशन अधिकारी का कार्यालय, हिंदी अध्यापक प्रशिक्षण महाविद्यालय (बी.एड़) और केरल विश्वविद्यालय की मान्यता प्राप्त शोध केंद्र हैं।

विज्ञापन दर (साधारण अंक)

	मासिक	वार्षिक
आवरण पृष्ठ 4 (रंगीन)	रु.2500.00	25,000.00
आवरण पृष्ठ 2 एवं 3 (रंगीन)	रु.2000.00	20,000.00
साधारण पृष्ठ पूरा	रु.1000.00	10,000.00
साधारण पृष्ठ 1/2	रु.600.00	6,000.00
साधारण पृष्ठ 1/4	रु.350.00	3,500.00

एक प्रति का मूल्य रु. 40/-   आजीवन चंदा : रु. 4000/-   वार्षिक चंदा : रु. 400/-

A /c No. 57022786007   IFS Code : SBIN0070033
State Bank of India, Vazhuthacaud Branch

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें : मंत्री, केरल हिन्दी प्रचार सभा, वषुतक्काडु, तिरुवनन्तपुरम-695 014.
दूरभाष:0471-2321378, 2329200, 2329459. फैक्स:0471-2329200 ई-मेल : khpsabha12@gmail.com

दूरभाष : 0471-2321378, 2329200, 2329459
फैक्स : 0471-2329459
मोबाईल : संपादक : 7898515222/ 9447657301

E-mail : khpsabha12@gmail.com
Website : www.keralahindipracharsabha.in

केरलज्योति
सांस्कृतिक जागरण की मासिक पत्रिका
अप्रैल 2025

संपादकीय

हिंदी है राष्ट्र के आत्मगौरव का प्रतीक

20 सितंबर 1928 में कलक्कत्ता में जो राष्ट्रभाषा सम्मेलन हुआ उसकी स्वागत समिति के अध्यक्ष के पद से नेताजी सुभाषचंद्र बोस ने कहा था कि यदि तन-मन-धन से हमने प्रयत्न किया तो भारत आज़ाद होगा और उसकी राष्ट्रभाषा हिंदी होगी। उसके बाद 20 अप्रैल 1935 को हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग में 24 वें अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए महात्मा गाँधी जी ने भी कहा था कि हिंदुस्तान को सचमुच एक राष्ट्र बनाना है तो चाहे कोई माने न माने राष्ट्रभाषा तो हिंदी ही बन सकती है। अहिंदी प्रांतों में रहनेवालों विद्वानों और चिंतकों ने भी हिंदी की वकालत की जिनमें प्रमुख थे ईश्वरचंद्र विद्यासागर, केशवचंद्र सेन, लालालजपत राय, विपिनचंद्र पाल, बालगंगाधर तिलक, राजगोपालाचारी, केलप्पन आदि।

खेद के साथ कहना पडता है कि देश को आज़ाद हुए कई दशक हो गए फिर भी हिंदी वह गौरव प्राप्त नहीं कर सकी जिसकी वह अधिकारिणी है। इसके पीछे देश की अपनी मज़बूरियाँ भी हो सकती हैं और हमारे प्रयासों में भी कमी रही है। उदाहरण के तौर पर तमिलनाटु में राजनीतिक स्वार्थ से वशीभूत कुछ लोग हिंदी विरोधी अभियानों में लगे हुए हैं। लोगों में गलत विचारों का प्रचार करके ये लोग कुछ वोट पाने के लिए जनता को भडका रहे हैं। ऐसे लोगों को राष्ट्रप्रेमी कहना मुश्किल है। क्योंकि हिंदी हमारी अखण्डता एवं एकात्मकता का प्रतीक है। यह सोचने की बात है कि हम किस प्रकार से आत्मगौरव को प्राप्त कर सकें? हमें अपने भीतर झाँकना होगा और समझना होगा कि भारत की समस्त भाषाओं को समाहित करने की शक्ति हिंदी में है, वह सबको स्वीकार करती है और सबको अपना लेती है। असल में हिंदी केवल एक भाषा नहीं, बल्कि एक संस्कृति है, एक वैचारिक क्रांति है जो शताब्दियों से अपनी यात्रा के अनंत पड़ावों और मोड़ों से होती हुई एक ऐसी गंगा है जिसमें अनेक दिशाओं से असंख्य धारायें आकर मिलती रही हैं और उसने सहजतापूर्वक स्वीकार भी की। यद्यपि संविधान में हिंदी को राष्ट्रभाषा का दर्जा नहीं दिया गया है तथापि जन हृदयों में हिंदी भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में जानी जाती है।

प्रो.डी.तंकप्पन नायर
मुख्य संपादक

श्रीनारायणगुरुचरित महाकाव्य

प्रो.डी.तंकप्पन नायर

बाईसवाँ सर्ग

आजन्म संन्यासी और आजन्म क्रांतिकारी

1. पहचाना श्रीनारायण गुरु ने समाज को सही रूप में
और वे न पड़े कल्पनाओं या सपनों के पीछे कभी
सामाजिक परिवर्तन को उनकी थी विचारधारायें सुदृढ़ और
महत्व रखती थीं वे अपनी दार्शनिक मौलिकता की वजह।

2. कोई नहीं है उनके सानी केरल के सांस्कृतिक इतिहास में और
समाज में भौतिक व आध्यात्मिक क्षेत्र में हो रहे अपमान के
विरुद्ध उनकी प्रतिक्रियायें थीं सौम्य किंतु थी शक्तिशाली
इसलिए लगा जनता को कि वे थे नई क्रांति के सच्चे उद्घोषक।

3. युगानुसार आवश्यकता के निर्वहण को होता है अवतार
जो करते हैं दूर समूह के हृदयगत अपचय को, फिर करते हैं
स्थापना नये धर्म की करने को जनोद्धार और हुआ जन्म
श्रीनारायण गुरु का अग्रदूत रूप में आध्यात्मिक क्रांति के।

4. ईसा के युग में आवश्यकता थी अत्यधिक स्नेह की
इसलिए प्रमुखता दी उन्होंने स्नेह को अपने वचनों में
ज़रूरत थी भाईचारे की नबी के युग में इसलिए
देते थे वे सब को संदेश भातृत्व भाव का।

5. बुद्ध के जमाने में था हिंसा का बोलबाला
सब कहीं इस कारण उन्होंने लक्ष्य कर लोगों के अमन-
चैन को किया प्रचार अहिंसा का और बल दिया हिंसा
छोड़ने पर और यों होता है कोई लक्ष्य सब अवतारों का।

6. आजन्म संन्यासी और आजन्म क्रांतिकारी थे गुरुदेव
और करते थे अगवानी निरंतर मुक्ति दिलाने निम्न वर्ग को
गुरुदेव-मन को अस्वस्थ करती थी समाज की जीर्णतायें और
किया निर्णय उन्होंने मुक्त करने को हिंदू धर्म को रूढ़ियों से।

7. जो शिव-प्रतिष्ठा की थी उन्होंने अरुविप्पुरम में वह
थी उनकी आध्यात्मिक एवं तपःशक्ति की एक झाँकी और
करने पर प्रतिष्ठा जब प्रश्न उठाया ब्राह्मण पुरोहितों ने
तो उनका दिया उत्तर बन गया अमिट इतिहास के पन्नों पर।

8. कहा था उन्होंने कि मैंने की थी प्रतिष्ठा ईष़वा-शिव की
न कि ब्राह्मण शिव की ऐसा कहकर दी चुनौती पुरोहिताई की
उन्होंने न दिया शाप वचन किसी पर या न निकली
उनके मुँह से क्रोधभरी वाणी अपने निंदकों के प्रति भी।

9. इस नवीन क्रांति की विशेषता थी उसका सौम्य भाव
और उसकी अहिंसात्मक और शान्तियुक्त रीति की
गुरुदेव का यह महत् प्रभाव खूब चर्चित हुआ जन-मन में
क्रांति का भद्रदीप जलाके दूर किया अज्ञान का अंधकार।

10. गुरुदेव की आज्ञा से आलुवा में स्थापित अद्वैत आश्रम
और मठ की दीवारों पर एक विज्ञापन है जिस में कहा
गया है कि मानव की एक जाति एक धर्म और एक ईश्वर है
और उसकी अन्य कोई जाति धर्म या ईश्वर नहीं है।

11. जो भी अवसर उन्हें मिलते समझाने को लोगों को
जाति की निस्सारता को देते थे वे उपदेश उनको
किन्तु कभी भी इसके लिए न कहते थे कोई अपशब्द
बोलते थे वे शांतभाव से औरठ करते भी थे वैसे ही।

12. एक बार हुई एक रोचक घटना रेलयात्रा के दौरान
उस यात्रा में परिचित हुए एक व्यक्ति ने पूछा उनसे कि
आपका क्या है नाम तो दिया उत्तर कि बुलाते हैं नारायण
और सहयात्री ने फिर पूछा कि जाति में आप कौन हैं?

13. गुरुदेव ने पूछा उससे कि क्या मालूम न होता देखने पर
प्रत्युत्तर पाकर कि न मालूम होता तो मुस्कान सहित
बताया उन्होंने कि देखने पर जिसे मालूम नहीं होता उसे
सुनने पर कैसे होगा मालूम और निरुत्तर हुआ सहयात्री।

14. गुरुदेव के आदेशों का पालन करना होता है उनके
शिष्यों को भी और वे जो पालन करते थे शिष्यों को भी
करना है उनका पालन और शिवगिरि आश्रम में हुआ था एक दृष्टांत
इसी विषयक और उनके संकल्प में आश्रमवासी हो आदर्शनिष्ठ।

15. चारी नामक एक युवक हुआ आश्रम का अंतेवासी जो
शिष्यत्व ग्रहण करके गुरुदेव का रहने लगा शिवगिरि के
आश्रम में ब्रह्मचारी के रूप में किन्तु हुए कई आरोप
उसके विरुद्ध और अंत में पहुँचे गुरुदेव के कानों में भी।

16. गुरुदेव ने समझ लिया कि यह आरोप सही है और बुलाया
चारी को और कहा यों कि चारी योग्य नहीं है ब्रह्मचारी
होने को इसलिए ब्रह्मचारी का 'ब्रह्म'यहाँ छोड़कर चारी जा
सकते हैं यही होगा ठीक स्वयं को और आश्रम को भी।

17. केरल के प्रसिद्ध बुद्धिवादी कुट्टिप्पुषा कृष्णपिल्लै ने प्रकाश
डाला है निरीक्षण करके गुरुदेव के जीवन पर कि उन्होंने
अन्य धर्माचार्यों की भाँति नहीं बाँटा था जीवन को भौतिक एवं
आध्यात्मिक, बल्कि मानते थे दोनों हैं जीवन में अनिवार्य तत्व।

18. सदा आनंदमय थे गुरुदेव और थे अपने आश्रितों को सखा
बंधु व करुणामय और था उनका लक्ष्य बनाना मानव को
श्रेष्ठ मानव और फ़ैलाना उनमें समभावना और इसके लिए
किया था उन्होंने आध्यात्मिकता का उपयोग सामूहिक कल्याण को।

19. गुरुदेव के आदर्श और विचार हैं प्रासंगिक वर्तमान
समाज में भी जहाँ आज भी अधःस्थितों को करना पड़ता है
चुनौतियों का सामना नौकरी शिक्षा के और अन्य क्षेत्रों में भी
इस कारण उच्च विचार गुरुदेव के हैं सब को मार्गदर्शक।

20. अपने काव्य अद्वैतदीपिका में अत्यंत महत्व रखता है
गुरुदेव का यह कथन कि यदि देखना संभव होना है तो
केवल आँखें होने से नहीं होता संभव अपितु अपनी आँखों को
खोलकर रखना है अन्यथा न प्रयोजन है आँखें होने से।

21. भीतर का ज्ञान होने को बाधा है भीतरी आँखों का
बंद रहना और ज्ञान का रहस्य समझने को चाहिए
भीतरी आँखों को खोलना और यह सत्य जान लो कि
न मिलता किसी को ज्ञान का रहस्य आप से आप।

प्रौद्योगिकी युग में हिंदी का बदलता स्वरूप

डॉ सविता प्रमोद

प्रस्तावना :- वस्तुतः प्रौद्योगिकी व्यावहारिक और औद्योगिक कलाओं और प्रयुक्तविज्ञानों से संबंधित अध्ययन है तथा वैज्ञानिक चिंतन का परिणाम है जिसे सम्प्रति व्यवसाय रूप में बाजारवाद से भी जोड़कर देखा गया है। हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति में जो वस्तुएँ प्रयुक्तहोती हैं तथा जिसको बनाने के लिए प्रौद्योगिकी उपलब्ध है। युगीन परिवेश में उपलब्ध वस्तुओं की प्रक्रिया, प्रकृति, प्रौद्योगिकी एवं संस्थाओं के पारस्परिक क्रियात्मक संबंध में निहित है। मानव प्रौद्योगिकी द्वारा प्रकृति के साथ क्रिया करते हैं और अपने आर्थिक विकास की गति को तेज करने के लिए विश्व बाज़ार का निर्माण करते हैं। आज का युग सूचना प्रौद्योगिकी एवं वैज्ञानिक अनुसंधानों का युग है जिसमे हिंदी भाषा का बदलता हुआ स्वरूप देखा गया है।

शोध सारांश : प्रौद्योगिकी युग में हिन्दी भाषा के प्रति जनमानस का आकर्षण बढ़ा है। प्रिंट मीडिया के आविर्भाव के कारण, प्रेस मीडिया ने एक बहुत बड़ी भूमिका हिन्दी भाषा और साहित्य के क्षेत्र में निभाई है। आज हिन्दी एक आधुनिक भाषा के रूप में वैश्विक स्तर पर स्थापित हुई है तथा पहले ही चक्र में 'बाजार की भाषा बन गई और बाजारवादी संस्कृति का अब अंग बन गई है। हिन्दी भाषा का एजेन्डा आज भी वैश्विक स्तर पर विकास, विस्तार एवं प्रसार-प्रचार के एजेन्डा के रूप में क्रियाशील है यह हिन्दी का बदलता हुआ रूप का ही योधन करता है। बाजारवादी संस्कृति का वर्चस्व और उसमें हिन्दी का अपना आधिपत्य ये दोनों प्रश्न प्रौद्योगिकी से अभिन्न रूप से जुड़े हुए हैं। हिन्दी का अपना बाजार है यह बदलाव नई सूचना प्रौद्योगिकी क्रांति, मीडिया तंत्र एवं जीवनशैली के परिवर्तन की परिणति है। प्रौद्योगिकी युग में हिन्दी पहली बार बाजार की भाषा बनी है। बाजार की भाषा यानी बाजार बनाने वाली भाषा और बाजार में बनी भाषा। इससे पूर्व हिन्दी का स्वरूप व्यवसाय के क्षेत्र में बनने की जगह जनसंचार के क्षेत्र में बनता रहा है।

हिन्दी व्यापार और बाजार में रुचि रखने वाला एक बड़ा वर्ग उत्पन्न हो गया है जो नई भाषा हिन्दी, अँग्रेजी के शब्दों के साथ गढ़ रहा है। हिन्दी में अँग्रेजी के प्रचलित शब्दों का प्रयोग बाजारवादी हिन्दी में खूब हो रहा है, जैसे कम्पनी, डिलीवरी, सप्लाई, अप्लाई, प्रोजेक्शन, शेयर, मार्केट, रेट, स्टॉक, इन्पलेशन आदि। नई व्यवसायिक हिन्दी एक ग्लोबल हिन्दी है जो बाजार की सहायक बन गई है। भारत विश्व बाजार का अंग बन चुका है तथा विश्व बाजार में हिन्दी अपनी उपस्थिति दर्ज करा चुकी है। मीडिया के बाजारी वातावरण में अँग्रेजी के साथ हिन्दी का नया संबंध स्थापित हुआ है। इस प्रकार समाचार पत्रों, टी.वी. चैनलों ने हिन्दी भाषा को एक नया रूप दिया है जिसे मुक्तबाजार, तकनीक, सूचना प्रौद्योगिकी की आवश्यकता है।

सूचना प्रौद्योगिकी के परिणाम स्वरूप आजकल गोष्ठियों, सेमिनारी, वेबिनारी, लोकार्पण समारोहों आदि के समाचार, समाचार पत्रों में प्रकाशित हो रहे हैं तथा मीडिया अपने आप में एक बहुत बड़ा बाजार सिद्ध हो रहा है। सूचनातंत्र एवं प्रौद्योगिकी को लेकर हिन्दी समाज बहुत उत्साहित है। हिन्दी को विश्व भाषा बनाने में टीवी सूचनातंत्र, प्रौद्योगिकी क्रांति आदि माध्यमों का विशेष योगदान रहा है। अब हिन्दी रोजगार की भाषा एवं विश्व बाजार की भाषा बन गई है। करीब एक करोड़ की जनसंख्या विश्वभर में रोजगार हेतु विदेशों में विस्थापित है, जिनकी भाषा मातृभाषा, बोलचाल की भाषा, व्यवहार की भाषा हिन्दी है। विस्थापन और प्रवास के कारण हिन्दी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा बन गई है। 'विश्व मंच पर हिन्दी का बदलता परिदृश्य' आलेख में कहा गया है कि विश्व में अब अंग्रेजी भाषा का राज्य चल रहा है। इसका मूल कारण प्रधानतया आजकल विकसित हो रही तकनीकी, सूचना और प्रौद्योगिकी कह सकते हैं। बदलते वैश्विक आर्थिक परिवेश का प्रभाव हिन्दी पर भी हावी हो रहा है। आर्थिक भूमण्डलीकरण से नए-नए व्यवसायों का विकास होने के कारण अधिकांश युवा आर्थिक अवसरों की खोज में ऐच्छिक रूप से विभिन्न देशों में जा रहे है। जहाँ जहाँ भारतीय प्रवास हो रहे हैं, वहाँ-वहाँ उनके आपस की

सम्पर्क भाषा हिन्दी हो रही है। इससे विदेशों में हिन्दी बोलने वाले भारतीयों की भी संख्या में वृद्धि हुई। हिन्दी में बोलते हुए इन सबमें एक देशवासी और एकात्मभाव का भाव विकसित हो रहा है। नए-नए वैज्ञानिक अनुसंधानों और कम्प्यूटर आधारित ज्ञान हिन्दी में अब सुलभ हो रहे हैं। आज विदेशी कम्पनियाँ भी भारतीय भाषाओं में कम्प्यूटर आधारित सॉफ्टवेयर विकसित कर रही है जिसके मूल में सूचना प्रौद्योगिकी की भाव संपदा है। विश्व में आज इन्टरनेट पर उपलब्ध गूगल एक बहुत बड़ा खोजी इंजन है। हिन्दी के महत्व एवं उपयोगिता को दृष्टिगत करते हुए इसने अपने सर्चइंजन में हिन्दी में काम करने की सुविधा प्रदान की है। कारण स्पष्ट है कि भारत में वर्तमान आवश्यकताओं को देखते हुए उनके लिए हिन्दी को अंगीकार किए बिना उनकी वाणिज्य व्यापार आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो सकती है।

आई आई. टी. में भी हिन्दी अध्ययन,अध्यापन एवं शोधकार्य को बढ़ावा मिल रहा है। उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय में भी हिन्दी और अंग्रेजी में बहस हो रही है तथा फैसले भी धीरे-धीरे अब हिन्दी के साथ-साथ अंग्रेजी और भारतीय भाषाओं में लिखे जा रहे हैं। प्रशासनिक सेवाओं की परीक्षाओं में भी हिन्दी में उत्तर लिखने का प्रावधान है। कम्प्यूटर और सूचना प्रौद्योगिकी के परिणाम स्वरूप हिन्दी का स्वरूप निश्चित रूप से बदला है तथा पुनरावर्तक कार्यों को हिन्दी में अधिक निपुणता और तीव्रता से करने की क्षमता में वृद्धि हुई है। हिन्दी के कारण पूर्व निष्पादित कार्यों को कुछ बदलाव सहित पुनः पेश करने की दक्षता देखी गई है। निष्पादित कार्यों के संदर्भ और उपयोग के लिए पुनः प्राप्त करने की क्षमता हिन्दी में है ।

संप्रति हिन्दी सम्पूर्ण विश्व में सर्वाधिक बोली और समझी जाने बाली भाषा है। प्रौद्योगिक - सम्पूर्ण विश्व में पैंसठ करोड़ लोगों की पहली भाषा और पचास करोड लोगों की दूसरी और तीसरी भाषा है। हिन्दी का बदलता स्वरूप इस बात का प्रमाण है कि हिन्दी गुजरात, महाराष्ट्र, पंजाब, जम्मू-कश्मीर, कर्नाटक, केरल, तेलंगाना, नेपाल, भूटान, पाकिस्तान, बांग्लादेश, संयुक्त अरब अमीरात, ओमान, फीजी, मॉरीशस, थाईलैंड, सूरीनाम, त्रिनिदाद, गायना आदि प्रान्तों और देशों में दूसरी और तीसरी भाषा के रूप में प्रयुक्त हो रही है। शेष विश्व में करीब बीस करोड़ लोगों द्वारा चौथी और पांचवीं तथा विदेशी भाषा के रूप में हिन्दी प्रयुक्त हो रही है। इस प्रकार सम्पूर्ण विश्व में करीब एक सौ पैतीस करोड़ लोग किसी न किसी रूप में हिन्दी बोलते और समझते हैं जिसके मूल में सूचना और प्रौद्योगिकी क्रांति है।

आज प्रौद्योगिकी युग में हिन्दी का बदलता हुआ स्वरूप इसका साक्ष्य है कि विश्व में हिन्दी सबसे तीव्रगति से बढ़ने वाली भाषा सिद्ध हुई है। इंटरनेट पर हिन्दी में प्रस्तुत होने वाली सामग्री में विगत पाँच वर्षों में 94 प्रतिशत की दर से वृद्धि हुई है। इस समय भारत में 15 करोड़ लोगों के पास स्मार्ट फोन हैं जिसमे 63 करोड से अधिक लोग हिन्दी का प्रयोग करते हैं। नेटफ्लिक्स अब पूर्णरूपेण हिन्दी में उपलब्ध है। अमेजान पर भी हिन्दी में आदेश भेजे जा सकते हैं। प्रौद्योगिकी के परिणाम स्वरूप अधिकांश बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ हिन्दी में अपने उत्पाद के साथ उपस्थित हैं।

उपसंहार : आज सूचना प्रौद्योगिकी तंत्र ने हिन्दी भाषा का स्वरूप बदल दिया है. उसकी नियति में परिवर्तन ला दिया है। उसकी रुचि रुझान अर्थतंत्र और विश्व बाजारवाद से जुड़ गई है। संचार की सघनता और तीव्रता ने हिन्दी भाषा में अदभुत बदलाव किया है। कारण है कि तकनीक का दबाव भाषा के रूप और प्रचलन में अवश्यम्भावी परिवर्तन लाता है। हिन्दी भाषा का भूगोल आज बदला है। विश्व पूँजी के नियंता बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को यह ज्ञात है कि अगर किसी ब्रांड को अखिल भारतीय बाजार में चालू करना है, उसे लोकप्रिय बनाना है तथा उसे आर्थिक सम्पन्नता का माध्यम बनाना है, तो हिन्दी में लांच करना ही उपयोगी और लाभप्रद रहेगा। आज हिन्दी ही मीडिया और दूसरे आवर्त की बाजार में ताकत है। सम्प्रति हिन्दी के समान वैश्विक स्तर पर दूसरा कोई बड़ा बाजार उपलब्ध नहीं है। अतएव बाजार ने हिन्दी को सबकी पहली सम्पर्क भाषा बना दिया है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि सूचना प्रौद्योगिकी विभाग, संचार और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय ने यूनिकोड मानदण्डों में इंडिक लिपियों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिए यूनिकोड संकाय की स्थापना की है। अतिरिक्तभाषाओं और लिपियों जैसे कि लपेचा आदि को भी सम्मिलित करने हेतु उपाय किए गए हैं। एन.आई.सी. द्वारा गत तीन वर्षों में 147 सॉफ्टवेयर पैकेज तैयार किए गए हैं जिनमें 114 अँग्रेजी में तथा मात्र 33 द्विभाषी अथवा हिन्दी में तैयार किए गए हैं। आवश्यकता आज इस बात की है कि सॉफ्टवेयर विकास से संबंधित शोधकार्य मूलरूप में हिन्दी में ही किए जाएं। साथ ही हिन्दी के मानक कीबोर्ड का चयन कर इसे अनिवार्य रूप से समी सॉफ्टवेयर में लोड किया जाए।

संदर्भग्रंथ सूची-

1. विश्व में हिन्दी और फीजी, आलेख-करुणाशंकर उपाध्याय-भाषा पत्रिका फीजी विशेषांक? नवम्बर-दिसम्बर 2022 ई.
2. विश्व मंच पर हिन्दी का बदलता परिदृश्य, उपरिवत
3. वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी के समक्ष चुनौतियाँ, राजेन्द्र सहगल
4. भूमण्डलीकरण और साहित्यिक परिप्रेक्ष्य डॉ पशुपतिनाथ उपाध्याय, भूमण्डलीकरण और हिन्दी भाषा आलेख
5. 31 मंत्रालय के वेबसाइट हिन्दी में आज उपलब्ध है जिनमें सूचना और प्रसारण मंत्रालय भी है।

असिस्टेंट प्रोफेसर- हिन्दी विभाग
डी.बी. पम्पा कॉलेज, पारुमाला,
पत्तनमत्तिट्टा, केरल 689826

स्वर्गीय डी श्रीकुमारन को भावभीनी श्रद्धांजलियाँ

केरल हिंदी प्रचार सभा की कार्यकारिणी समिति के सदस्य डी श्रीकुमारन का 21 मार्च 2025 को अकस्मात् निधन हो गया। हिंदी के प्रति सर्मपित सेवी-विद्वान के रूप में आपकी ख्याति अप्रतिम रही। सन् 2018 से 2025 के दौरान आप कार्यकारिणी समिति के निष्ठावान सदस्य रहे। आपके निधन से जो क्षति हुई है उसकी आपूर्ति असंभव है और उसपर सभी केरल हिंदी प्रचार सभा परिवार की भावभीनी श्रद्धांजलियाँ।

मंत्री, केरल हिंदी प्रचार सभा

हिंदी यात्रा साहित्य एक विचार

डॉ धन्या एस

सब लोग अपनी तनावग्रस्त जिन्दगी से बचने के लिए यात्रा करना चाहते है। यात्रा साहित्यकार जो कुछ अपनी यात्रा में देखते है, अनुभव करते है, उसे बढ़ी कुशलता से सृजनात्मकता के साथ लिखकर सबके मन में यात्रा की ओर आकर्षण पैदा कराते है। यही यात्रा साहित्य का उद्धेश्य है। एक यात्रा विवरण पढ़ते समय लोगों को वहाँ जाने के लिए एक प्रकार की व्याकुलता मन में उत्पन्न हो जाती है। जीवनकाल में हर एक व्यक्ति यात्रा करता है। यात्रा हमारे मन में अजीब सी ताज़गी उत्पन्न करती है। जिन लोगों के अन्तर प्रतिभा शक्ति है, सृजनात्मकता है, वे लोग अपने अनुभवों को कागज़ में डालना चाहते हैं यात्रा से जो सुख और संतृप्ती मिलती है, उसे दूसरों के साथ भी बाँटना चाहते हैं।

साहित्य जगत में यात्रा साहित्य एक अलग साहित्य विधा बनकर विकसित हुई है। हिन्दी साहित्य में हम देखें तो अन्य गद्य विधाओं की भाँति यात्रा साहित्य का उदय भारतेन्दु काल से ही माना जाता है। उनके संपादन में निकलनेवाली पत्रिकाओं में यात्रा साहित्य प्रकाशित हुआ। दामोदर शास्त्री कृत 'मेरी पूर्व दिग्यात्रा' (सन् 1885) देवी प्रसाद खत्री कृत 'रामेश्वर यात्रा' (सन् 1893) आदि महत्वपूर्ण यात्रा विवरण हैं। यात्रा साहित्य संचरणा, शैली, सब कुछ अन्य साहित्य विधाओं में से बिलकुल अलग ही हैं।

हम देखे तो यात्रा साहित्य लेखकों में राहुल सांकृत्यायन का नाम अप्रतिम है। उन्होंने हिन्दी यात्रा साहित्य विधा संपुष्ट कराने में बहुत अधिक योगदान दिया है। उनके यात्रा-वृत्तान्तों की तुलना में कोई दूसरा लेखक कहीं नहीं ठहरता है।

'मेरी तिब्बत यात्रा', मेरी लद्दाख यात्रा, किन्नर देश में, रूस में 25 मास, तिब्बत में सवा वर्ष, मेरी यूरोप यात्रा, यात्रा के पन्ने जपान, ईरान, एशिया के दुर्गम खण्डों में आदि इनके कुछ प्रमुख यात्रा वृत्तान्त हैं। सन् 1949 में इन्होंने 'घुम्क्कड़ शास्त्र' नामक ग्रन्थ की रचना की। उन्होंने संपूर्ण भारत, रूस, यूरोप, सोवियत और श्रीलंका का भ्रमण किया और फिर उन्हीं अनुभवों को संजोते हुए घुमक्कड़-शास्त्र लिखा। उन्होंने इस प्रकार कहा कि "घुमक्कड़ी एक रस है जो काव्य के रस से किसी तरह भी कम नहीं है। कठिन मार्गों को तय करने के बाद नए स्थानों में पहुँचने पर हृदय में जो भावोद्रेक पैदा होता है वह एक अनुपम चीज़ है। उसे कविता के रस में हम तुलना कर सकते हैं, और यदि कोई ब्रहमा पर विश्वास रखता हो, तो वह उसे ब्रह्म-रस समझेगा।"[1] "घुमक्कड़ शास्त्र नामक उनकी रचना में अनेक भाग है। इसमें राहुल सांकृत्यायन ने यह कहा कि उसकी दृष्टि में दुनिया की सर्वश्रेष्ठ वस्तु घुमक्कड ही है। घुमक्कड़ से बढ़कर व्यक्ति और समाज का कोई हितकारी नहीं हो सकता। उनकी राय में प्राकृतिक आदिम मनुष्य परम घुमक्कड़ था।"[2] खेती, बागबानी तथा घर-द्वार से मुक्त वह आकाश के पक्षियों की भाँति पृथ्वी पर सदा विचरण करता था। आधुनिक वैज्ञानिकों में चार्ल्स डारविन का महत्वपूर्ण स्थान है। लेकिन डारविन अपने वैज्ञानिक आविष्कारों की पूर्ति के लिए यदि पर्यटन नहीं किया करते तो उनके आविष्कारों की पूर्ति नहीं कर पाते। नई - नई बातों को देखकर-समझने के लिए पर्यटन हमारे लिए ज़रूरी है। इससे हम अधिक से अधिक अनुभव संपन्न बन जाते हैं।

सांकृत्यायन जी बताते हैं कि यदि हम किसी संचार साहित्य पढ़कर उस जगह का उसी प्रकार का अनुभव करने में कुछ विफल ही बन जाते हैं। क्योंकि वहाँ के रूप, गंध का अनुभव हमें पुस्तकीय विवरण से न मिल पाते, जो कि घुमक्कड से प्राप्त होती है। लेकिन घुमक्कड संबन्धी रचना लोगों के मन में घुमक्कडी बनने की इच्छा लाने के लिए अवश्य सफल हो सकता है।

यात्रा साहित्यकारों की राय में जीवनकाल में हमें मन की तनाव दूर करने के लिए किसी भी प्रदेश में संचार करना चाहिए "जीवन की अर्धेशती भी गुजरने

लगी। स्वप्न शायद स्वप्न ही रहे। कौन जाने काल कब आकर कहे चलो अगली यात्रा के लिए किसी अन्य लोक में।" हम यहाँ कुछ ही दिन वास करने के लिए आये हैं। हमारे जीवनकाल पूर्ण होने के पूर्व हमे कुछ जगह जाना है।

राहुल सांकृत्यायन जी के मत में यदि आदिम-मानव एक ही जगह यानि नदि या तलाब के ही किनारे जीवन बिताकर रह गये तो दुनिया इस तरह विकसित नहीं हो पायेगी। लोग यात्रा नहीं करते तो वे लोग कूप मंडूक बन जायेंगे। स्त्री-और पुरुष दोनों आजकल समान रूप से घुमक्कडी है। स्त्री होने से इसमें कोई भेदभाव नहीं है। जो घुमक्कडी पसन्द करते है उसे करना चाहिए, और जो लोग अपने जन्म सफल करना चाहते है उन लोगों को घुमक्कडी बनना ही चाहिए। राहुल जी हमें यह बताना चाहता है कि दुनिया में मनुष्य जन्म एक ही बार होता है। और जवानी भी केवल एक ही बार आती है। इसलिए साहित्यकार हमसे घूमने के लिए कहता है क्योंकि संसार हम सबका स्वागत करते है।

घुमक्कडी का बीज़ाकुर कहीं भी उद्‌भव हो सकता है। चाहे धनी कुल में पैदा हो या निर्धन कुल में। यात्रा करने से मन पवित्र बन जाता है और लोग आत्मीयता की ओर जाने के लिए विवश होते है। "गति ही जीवन है और जड़ता मृत्यु। गतिशील रहकर मानव अपने जीवन के प्रगति-द्वार खोलता है।"[3]

राहुल सांकृत्यायन ने यात्रा शास्त्र के बारे में जो कुछ ढूँढ निकला है, वो 'घुमक्कड-शास्त्र' नामक अपने ग्रन्थ के सहारे व्यक्त करने और यात्रा करने से हमारे जीवन में होनेवाले मानसिक परिवर्तन के बारे में भी बताने की कोशिश करते है। राहुल का यह यात्रा वृत्तान्त हिन्दी साहित्य में अपना अनूठा सम्मान रखता है, और इसमें दृश्यों का सजीव चित्रण भाषा के माध्यम से अनुपम आनंद की सृष्टि करता है। किस प्रकार हमें अपना यात्रा-विवरण रोचकता से पाठकों के सामने रखना चाहिए उसका सीधा-साधा सरल विवरण उनकी पुस्तक में उपलब्ध है। यात्रावृत्तान्त तो यात्रा के बाद स्मृति के आधार पर लिखे जाते है, इसलिए यात्री को यह करना है कि वे तो यात्रा के दौरान जो-जो बात देखता है, जो बात समझा है उन तथ्यों को डायरी या नोट बुक में दर्ज करना चाहिए। क्योंकि यात्रावृत्तान्त तो काल्पनिक नहीं होता, वे तो तथ्यात्मक होना चाहिए, स्थानों का वर्णन सही होना चाहिए वहाँ की संस्कृति, भाषा सबका वर्णन उसी प्रकार होना चाहिए। स्थानों का नाम, एक स्थान से दूसरी स्थान जाते वक्त होते समय और किलोमीटर आदि का नाप-तौल भी सही तरह बिना किसी काल्पनिकता से करना चाहिए। यात्रावृत्तान्त का रूपबन्ध वस्तुपरक और तथ्यात्मक होता है। इसमें विवरण आत्मपरक होता है। यात्रावृत्तान्त के रूपबन्ध में नाटकीयता, कुतूहल आदि तत्व भी प्रयुक्त होते हैं, लेकिन यह आवश्यक है कि इसके इस्तेमाल से यथार्थ में विकृति नहीं आए। यात्रावृत्तान्त की अपनी कुछ खास विशेषताऐं होती हैं जो उन्हें एक-दूसरे से अलग करती है और उन्हें एक विशेष पहचान देती है। यात्रावृत्तान्त में स्थान और तथ्यों के साथ-साथ आत्मीयता, स्थानीयता, वैयाक्तिकता, कल्पनाशीलता और रोचकता होनी चाहिए। यात्रा वृत्तान्त वर्णन तो आमतौर से सभी विधाओं में पाया जाता है लेकिन यात्रा-वृत्तान्त का मूल ढाँचा ही इसपर खड़ा होता है। इसमें कथातत्व लगभग न के बराबर होता है। यात्रा ज्ञान शिक्षा का प्रमुख साधन है। इससे हमारा अनुभव संसार समृद्ध होता है।

संक्षेप में यह बताते है कि यात्रावृत्तान्तों का मूल उद्देश्य लेखक द्वारा यात्रा किये गये स्थल के संबन्ध में जानकारी देकर उन्हें भी ट्रावल करने के लिए आकर्षित कराना है। इसके पीछे साहित्यकार की जिज्ञासा वृत्ति निहित है।

संदर्भ :

1. घुमक्कड़ शास्त्र-राहुल सांकृत्यायन पृ - 29
2. इतिहास बनती यात्राएँ- डॉ श्याम सिंह शशि पृ -112
3. यायावर साहित्यः अवधारणा और अवदान - डॉ तुकाराम पाटील - डॉ माधुरी आर्या पृ. 17

असिस्टेंट प्रोफसर
ए जे कॉलेज ऑफ साइन्स & टेक्नॉलजी
तिरुवनंतपुरम

संजीव कृत 'जंगल जहाँ शुरु होता है' में आदिवासी जनजीवन

अंजना ए एस

हिन्दी साहित्य में सशक्त प्रतिभा संपन्न कहानीकार और उपन्यासकार के रूप में संजीव पहचाना जाता है। आप हमेशा शोषक वर्ग के खिलाफ आवाज उठाने की प्रेरणा देते हैं। गाँव से लेकर शहर तक दलित से लेकर आदिवासियों तक उनका लेखन फैला है। 'जंगल जहाँ शुरु होता है' उपन्यास का प्रकाशन सन् 2000 में हुआ। आदिवासी जीवन को सही अर्थों में न्याय देनेवाले लेखक संजीव ने थारु आदिवासियों की डाकू समस्या को केन्द्र बनाकर उपन्यास प्रस्तुत किया है। आदिवासियों का प्राकृतिक संघर्ष, ज़मींदार द्वारा किया जा रहा शोषण आदि उपन्यास में चित्रित करने का महान प्रयास संजीव ने किया है।

आदिवासी विमर्श पर आधारित 'जंगल जहाँ शुरु होता है' उपन्यास का कथा क्षेत्र 'मिनी चंबल' के नाम से प्रसिद्ध बिहार का पश्चिमी चंपारण है। थारुओं के डाकू बनने की विवशता के साथ थारुओं के शोषण की गाथा दर्शाया गया है। बाद्य और पाड़ा को प्रतीकात्मक तौर पर लिया गया है, जो शोषक और शोषितों का प्रतिनिधित्व करते हैं। पुलिस, डाकू, नेता और ज़मींदारों के अन्याय-अत्याचार को अभिव्यक्त किया गया है। आदिवासी की स्थिति नियति एवं त्रासदी उपन्यास का केंद्र है।

थारु आदिवासियों की डाकू समस्या को केंद्र बनाकर 'मिपी चंबल' में रहनेवाले आदिवासियों की सामाजिक दुरवस्था, प्रशासन-तंत्र की निर्ममता, धार्मिक, सांस्कृतिक और वांशिक इतिहास विषयक विचार व्यक्त किये गए हैं। उपन्यास के कथ्य को थारु जनजाति के संघर्ष से जुडकर प्रकृति को इसका आधार मानकर लिखा है। "मानव और प्रकृति का अंतस्सम्बन्ध तथा समाजशास्त्रीय दृष्टि के माध्यम से लेखक जटिल विधान का संधान करता है।"[1] पश्चिम चंपारण में डाकू उन्मूलन अभियान के पुलिस उप-अध्यक्ष कुमार है, जो डाकुओं को पकडने का कार्य कर रहा है। ईमानदारी उसकी परेशानी का कारण बनी। थारु लोग ज़मींदार, अधिकारी से शोषित हैं। डाकू हथियार प्राप्ति के लिए थारु से सम्बन्ध रखने के कारण उनकी पिटाई करती है। अपनी बेटी की हत्या पर शोक करते हुए उपन्यास के प्रमुख पात्र बिसराम कहता है - "हमारा तोहर तरीका से मौवत लिखल बा ए बेटी, तहरा के बचा न सकल बा ई अभाग।"[2] मलारी, बिसराम, नेनिया की हत्या पुलिस करती है, ऑपरोशन के नाम पर फर्जी इनकाउंटर करती है।

राजनीतिक नेताओं से संबंध रखकर पुलिस ने आदिवासियों को जातिवाद के आधार पर शोषण किया है। यह उपन्यास मुख्यतः "डाकू समस्या पर नहीं बल्कि जनतंत्र की समस्या पर केंद्रित है।"[3] संजीव ने प्रस्तुत उपन्यास द्वारा आदिवासियों के आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि समस्याओं पर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है। गैर आदिवासियों के द्वारा वंचित थारु जनजाति के आर्थिक अभाव को दूर करने के लिए संघर्ष करना पड़ता है। इसी तरह की समस्याओं से लड़ते लड़ते थारु जनजाति शोषित वर्गों के विरुद्ध आवाज उठाते हैं। थारु आदिवासी जनजाति लोग बैल चुराने से लेकर लकडियाँ बेचने तक का कार्य करते हैं। ज़मींदारों, राजनीतिज्ञों, ठेकेदारों जैसे लोगों के अत्याचार के कारण इस समाज में 'बिसराम' जैसे डाकू बन जाते हैं।

विवश थारु समाज को संजीव ने उपन्यास में दर्शाया है। काली सुंदर पांडे के यहाँ काम करता है, तब वह अपनी मज़दूरी की माँग करता है तो उसे निराश होना पड़ता है। इस व्यवहार से काली के मन में आक्रोश उत्पन्न होता है और वह अपराध की दुनिया में कदम रखता है। बिसराम के चीनी मिल बंद होने के बाद में उसका खेत चला गया है। फिर उसकी पत्नी मृत्यु से जूझ रही है, बेटी को साँप ने डस लिया है। आदिवासी दोहरी स्थिति में जीवनयापन कर जी रहे हैं। डाकुओं के आतंक से डरकर आदिवासी जन को उनके आदेश पर खाना बनाकर भेजना पड़ता है। इनको खाना भेजना पुलिस अपराध समझता है। खाना भेजनेवालों को डाकू लोग पैसे देते हैं। डाकुओं की

खाना भेजने के अपराध में बिसराम की पत्नी को पुलिस कैद कर लेती है। पुलिस और डाकू के अत्याचारों से ग्रस्त है आदिवासी जनजाति। आर्थिक अभावों में जीनेवाले इनके पास कोई साधन नहीं है। लेखक ने व्यक्त किया है - "जुगलों में बेंत है, आदमी में हुनर है, झूँडी, खाँची बना ही सकता है, लेकिन मसे लाने देता, बोत से आए धूस पाँति के लिए इसलिए यहाँ की नशी सी वस्तु करवाते हैं।"[4] डाकू बहुल क्षेत्र में औरतों को खरीदने-बेचने का व्यवसाय भी फैला हुआ है। इसलिए व्यक्त है कि 'जंगल जहाँ शुरु होता है' उपन्यास में थारु जनजाति की सभ्यता और संस्कृति का सुंदर वर्णन के साथ उनपर होनेवाले अन्याय, अत्याचार, शोषण पर प्रकाश डाला गया है।

'जंगल जहाँ शुरु होता है' उपन्यास में कभी भी फुफेरी बहन सीलारी पुलिस कुमार साहब से देह सम्बन्ध रखती है। यह उपन्यास में नेपाल और उत्तर प्रदेश से लगे बिहार के सीमावर्ती बेतिया जिले के जन-जातीय क्षेत्र में डाकू समस्या के बहाने वहाँ की सारी परिस्थितियों की छानबीन करने की कोशिश की है।संजीव की राय में - "यहाँ का विशिष्ट भूगोल, यहाँ की परजीवी, सामंती व्यवस्था, यहाँ के मारवाड़ी महाजनों का उपनिवेश किसी भी दरवाजे से आइए, आपको वहाँ डाकू बैठा मिल जागा।"[5]

प्रस्तुत उपन्यास में मानव द्वारा मनुष्य के उत्पीडन, विनाश, दमन, संस्कृति के विकृत मूल्य व मूल्यहीन राजनीति को केंद्र में रखा है। सामाजिक विषमता, मूल्य मूढ़ता, अलगावपन, टूटन, घुटन, संत्रास, भय, राजनीतिक मूल्यहीनता, अवसरवादिता, अनुशासनहीनता, भ्रष्टाचार आदि प्रश्नों को संजीव ने कथ्य बनाया है। पुलिस उपाधीक्षक कुमार उपन्यास का केन्द्रीय पात्र एवं नैरेटर है। बलात्कार वास्तविक रूप में चाहते नहीं घृणा करने से भी वे इस ओर धकेले जाते हैं। काली के पश्चाताप से स्पष्ट है कि "हमने नहीं चुनी थी वह ज़िंदगी। नहीं बने ये हम इन राहों के लिए। फिर भी देखो कैसे धकेले दिए गए।"[6] इस बार इस जंगल में प्रवेश करने के उपरांत इसमें वे इस तरह उलझ जाते हैं कि बाहर निकलना मुश्किल हो जाता है। काली इस मायने में औरों से भिन्न नारी है। वह सामाजिक अन्याय और उत्पीडन की प्रतिक्रिया में डकैत बनी है। कुमार ने उसे भागो नहीं, दुनिया को बादलों और दिमाग को कैसे नियंत्रित करे जैसी किताबें दी भी लेकिन नियति उसे क्रांतिकारी के बजाय डाकू बना डालती हैं क्योंकि - डाकू परशुराम द्वारा अपनी भौजाई के साथ किये गये बलात्कार और पुलिस द्वारा भाई बिसराम को हत्या का बदला लेना उसे ज़्यादा ज़रूरी लगता है। सुरेश उनियाल का कथन है, "काली के डाकू बनने और बने रहने का इससे बड़ा जस्टिफिकेशन दिया भी क्या जा सकता था।"[7] भ्रष्ट व्यवस्था से भली भाँति परिचित है 'जंगल जहाँ शुरु होता है' उपन्यास के डाकू।

यह उपन्यास पढ़ने के बाद डाकुओं के प्रति आक्रोश नहीं उत्पन्न होता है, न ग्रामीणों के प्रति क्षोभ। उस सड़ी व्यवस्था को कुचल देने का भाव उत्पन्न होता है। अतियथार्थ चित्रण पाठकों के हृदय में वितृष्णा पैदा करता है। थारुओं की लोक संस्कृति, उनकी धर्म भीरुता, दुर्दम्य, निजी जिजीविषा, प्राकृतिक लगाव, सहोदर मेला, लोकगीत, लोक नृत्य आदि का प्रभावी चित्रण हुआ है। सशक्तभाषा में उपन्यासकार ने वर्णनात्मक, प्रवाहात्मक, प्रतीकात्मक और काव्यात्मक शैली के माध्यम से उपन्यास का प्रस्तुतीकरण किया है। पात्रों के साथ-साथ कथाओं की अधिकता है। आदिवासी जन जीवन का व्यक्त एवं स्पष्ट रूप इसमें प्रमुख रूप से विदित है।

संदर्भ

1. संजीव, जंगल जहाँ शुरु होता है, पृ. 51
2. वही, पृ. 53
3. वही-
4. वही, पृ. 21
5. वही, पृ. 89
6. वही, पृ. 96-97
7. कथादेश, दिसंबर 2001, पृ. 90

शोध छात्रा, हिन्दी विभाग,
महात्मा गाँधी कॉलेज, तिरुवनन्तपुरम।
केरल विश्वविद्यालय

सह लेखक : डॉ अनूपा कृष्णन
असिस्टेंड प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, महात्मा गाँधी कॉलेज
तिरुवनन्तपुरम। केरल विश्वविद्यालय

आदिवासी स्त्री के अस्तिमा संकट की परख करती कहानियाँ

डॉ विजी वी

वर्तमान दौर में सबसे ज़्यादा उपेक्षित और शोषित है आदिवासी स्त्री। आदिवासी स्त्री व्यवस्था जनित विसंगतियों के कारण अपने अधिकारों से वंचित होकर अभिशप्त जिन्दगी जी रही है। अपनी पहचान को बनाए रखने के लिए उन्हें कड़ा संघर्ष करना पड़ता है। इसलिए समकालीन साहित्य में खासकर कहानी साहित्य में आदिवासी स्त्री के अस्मिता संकट के बहुतेरे संदर्भ उभर कर आए हैं।

पीटर पौल एक्का एस.जे की कहानी 'परती जमीन' में औद्योगिक क्षेत्र के आदिवासी स्त्री जीवन का सशक्त एवं प्रामाणिक अंकन हुआ है । विकास के इस दौर में भी आदिवासी औरतों की ज़िन्दगी असुरक्षित है। बाँध परियोजना से परंपरागत धंधा नष्ट होने के कारण आदिवासी औरतें बाँध के निर्माण कार्य में जुड़ी रहती हैं और सरकारी कुआर्टर में सफाई का काम भी करती हैं। दोनों जगहों में अधिकारी वर्ग आदिवासी लड़कियों की मजबूरी का फायदा उठाकर उनके साथ गन्दी हरकतें करते हैं और डरा-धमकाकर उन्हें अपनी हवस का शिकार बनाने के षड्यन्त्र भी रचते हैं। चीफ इंजीनियर भजनसिंह के आदेश पर कथावाचक का कमरा बुहारने आयी आदिवासी लड़की एतवारी अपनी विवशता का खुलासा करती हैः - 'कुआटर में अकेले आते डर लगता है छोटे बाबू... बड़े बाबू नीयत के अच्छे नहीं लगते हैं। जब अकेले आती थी, एक दिन उसने दरवाजा बन्द कर दिया था , जोर से चीखी - चिल्लायी तब उसने दरवाजा खोला था।... छोटे बाबू , रोजी-रोटी का सवाल है न ! बड़े बाबू ने कहा था - "यहाँ काम पर नहीं आओगी तो बाँध की मेहनत - मजदूरी भी तुम्हारे गाँव वालों के लिए बन्द हो जाएगा।"[1] ठेकेदार, ओवरसियर और मुंशी भजनसिंह के इशारे पर नाचनेवाले हैं। सब मिलकर निरीह आदिवासी औरतों की ज़िन्दगी में अंधेरा भर देता है।

भजनसिंह एतवारी की अस्मात लूट लेता है। एतवारी के मुँह से यह खबर सुनते ही उसका मंगेतर चैतू तीर-धनुष समेत भजनसिंह को ललकारता है। ऐसे में भजनसिंह चैतू और एतवारी दोनों को बाँध निर्माण के काम से हमेशा के लिए निकाल देता है। पैसे और ताकत के बल पर गाँववालों को अपने वश में कर देता है। एतवारी और चैतू के साथ हुए अन्याय की सही पहचान होने के बावजूद अपनी विवशता के चलते गाँववाले चुप्पी साध लेते हैं। "अगले दिन बाँध पर पूर्ववत् काम होता रहा।...चैतु और एतवारी की जगह खाली थी, उन्हें हमेशा के लिए काम से छुट्टी दे दी गयी थी। पता चला बड़े बाबू ने पैसों से गाँव के बड़े-बूढ़ों का मुँह बंद कर दिया था"[2] अर्थात् औद्योगिक क्षेत्र में आदिवासी औरतों के ऊपर शोषण का अनवरत् सिलसिला चलता रहता है। ऐसे में उनका अस्तित्व संकट में पड़ जाता है।

डॉ. फ्रांसिस्का कुजूर की कहानी 'फूल खिलते रहेंगे' डायन प्रथा के पीछे छिपे षड्यन्त्रों की पड़ताल करती है। लेखिका के मत में डायन प्रथा आदिवासी औरत की अस्मिता को तहस-नहस करने की साज़िश है। कहानी के प्रमुख पात्र हैं पुष्पा, उसका पति कुन्दन और कुन्दन की प्रेमिका जुबी। लगातार शराब पीने की वजह से कुन्दन टी.बी का शिकार बन जाता है। इलाज के लिए कुन्दन अपने खेत को गाँव के आदमी गोंझू के पास गिरवी रख देता है। ऐसे में उसकी आर्थिक स्थिति बिगड़ जाती है। डॉक्टर की मनाही के बावजूद कुन्दन चोरी-छिपे जुबी के घर में शराब पीने जाता है। जुबी पहले कुन्दन की प्रेमिका थी। लेकिन अब वह विधवा है और तीन वर्षीय पिंकी की माँ भी।

कहानी के एक प्रसंग में इसका संकेत है कि जुबी के घर में शराब पीते अपने पति को देखकर नाराज़ पुष्पा शराब की मटकी, कांच के ग्लासों और बोतलों को फोड़ देती है और जुबी को गालियाँ भी देती है। ऐसे में जुबी के मन में पुष्पा के प्रति बदले की भावना पनपती है। वह हमेशा पुष्पा को सबक सिखाने की ताक में रहती है। कुन्दन की खून की उल्टी से सने अपने कपड़ों को धोने के लिए सोहराई के त्योहार के दिन तालाब में पहुँची पुष्पा कपड़ा धोने के बाद अपना बाल भी धोती है। ऐन वक्तवहाँ पहुँची जुबी पुष्पा से प्रश्न करती हैः -"पुष्पा तुम डायन तो

नहीं हो? आज कार्तिक अमावस्या के दिन बाल धो रही हो। जानती हो न! आज बाल धोने वालों को डायन समझा जाता है।"[3] पुष्पा सच्चाई उसे समझाने की कोशिश करती है। लेकिन जुबी गाँव भर में अफवाह फैलाती है कि पुष्पा डायन है।

इस घटना के कुछ दिन पश्चात् गोंझू की पत्नी पुष्पा पर आरोप लगाती है कि पुष्पा की वजह से उसका बेटा रोगग्रस्त बन गया है। गोंझू का बेटा आखिर इलाज के बिना मर जाता है। इसीके तहत गोंझू द्वारा आयोजित पंचायत में पुष्पा के साथ बर्बर आचरण होता है। जुबी और गोंझू की बातें सुनकर पंच लोग पुष्पा को बेरहमी से पीटते हैं। उसे मैला खिलाते हैं और उसके सिर का मुंडन करके समाज से बहिष्कृत कर देते हैं। स्वयं को बेकसूर साबित करने के पुष्पा के सारे प्रयत्न बेकार हो जाते हैं। गोंझू कुन्दन के खेत को वापस न करने की कसम खाता है और सभी गाँववाले गोंझू और जुबी के पक्ष में खड़े हो जाते हैं। सप्ताह बाद अपने बैलों के लिए घास काटने तालाब के किनारे पहुँची पुष्पा तालाब में गिरी जुबी की बेटी पिंकी को अपनी जान जोखिम में डालकर बचाती है। पश्चाताप की आग में झुलसी जुबी दूसरे ही दिन पंचायत बैठाकर पंचों के सामने खुलासा करती हैः-"पुष्पा निर्दोष है। ... मुझे पछतावा हो रहा है कि मैंने पुष्पा पर घिनौना आरोप लगाया। बदले की भावना ने मुझे अंधा बना दिया था। मैंने ही गोंझू और उसकी पत्नी को अपने षडयंत्र में शामिल किया था। वे सहज ही तैयार हो गए। क्योंकि उसका बेटा लंबे समय से बीमार था। उसके बचने की आशा नहीं थी। खेत हड़पने के लिए गोंझू ने मेरा साथ दिया। बस शराब पिलाकर मैंने गाँव के पंचों को भी अपनी ओर मिला लिया था। पुष्पा न तो डायन है और न ही काली बिल्ली बनकर डराती है। मैं पुष्पा से पूरे गाँव के सामने माफी मांगती हूँ। मैं दोषी हूँ। और सजा भुगतने को भी तैयार हूँ।"[4] यह सुनकर सज़ा के रूप में पंच लोग जुबी से पाँच हज़ार रुपए जुर्माना भरने को कहते हैं और गोंझू से कुन्दन की ज़मीन बिना किसी शर्त के वापस ले लेते हैं।

'रेशमा' कहानी में रेशमा के ज़रिए जसिंता केरकेट्टा अपने ही समाज के लोगों द्वारा प्रताड़ित आदिवासी लड़की की दिल दहलानेवाली हक़ीक़त हमारे सामने पेश करती है। अमूमन कहा जाता है कि आदिवासी समाज में स्त्री सुरक्षित है। लेकिन रेशमा की आत्मा का संवाद इसको सौ प्रतिशत गलत साबित करता है। कहानी की शुरुआत में लेखिका पक्षी जगत को आदमी से बेहतर सिद्ध करती है। अपनी संस्कृति और मूल्यों से फिसलते आदिवासी समाज की कटु आलोचना भी करती है। अपने ही सगे - संबन्धियों द्वारा रेशमा यौन शोषण का शिकार बनती है। बाद में उसकी लाश को पेड़ पर टाँग देते हैं। पेड़ पर झूलते अपने देह को निहारते चील - कौवे आदि को देखकर रेशमा की रूह सोचती है : - " ..ये चील - कौवे - गिद्ध आदमी से बेहतर हैं। ये जिंदा इंसान को मांस का लोथड़ा नहीं समझते। ये किसी की रूह का गला नहीं घोंटते । किसी का बलात्कार नहीं करते। उसे पेड़ पर इस तरह नहीं टांग जाते। स्त्री को इंसान समझना और खुद भी इंसान हो जाना तो दूर की बात है, आदमी को इनकी तरह होने में भी बहुत वक्तलगेगा।"[5]

घर में अपनी मर्ज़ी से रहने को स्त्री के लिए एक कमरा भी नहीं है। आदिवासी लड़की की हालत भी इससे भिन्न नहीं है। रेशमा की नियति को कहानी में यों शब्दबद्ध किया गया हैः- "कोई न कोई किसी न किसी काम से कमरे में घुसता रहता है। कभी छोटा भाई , कभी बड़ा भाई, कभी माँ, कभी पड़ोस की काकी , कभी काकी की छोटी लड़की । सबके लिए दरवाजा खुला रहता है घर का। और ताला तो गांव में कोई लगाता भी नहीं । स्त्री को इन सबके बीच बेफिक्री के साथ सोने की आदत डालनी पड़ती है। शायद वह कभी भी पूरी नींद सो नहीं पाती । वह हमेशा चौकन्नी होकर सोती है या जीवन भर आधी नींद में होती है। मौत ही उसकी सबसे गहरी नींद होती है और उसकी कब्र ही उसका अपना कमरा, जहाँ उसे कोई परेशान नहीं कर पाता । या जीवन भर रोज - रोज वह जो थोड़ा - थोड़ा मरती है, उसी के भीतर उसका असल विश्राम होता है।"[6]

रेशमा अपने चाचा के घर में धान कूटने को जाती थी। चाचा का लड़का सोमरा धान कूटते वक्तरेशमा का हाथ बंटाता था। इस प्रकार दोनों बहुत नजदीक पहुँचते हैं। रिश्ते में भाई - बहन होने के बावजूद रेशमा सोमरा से गर्भ धारण करती है। रेशमा जिस आदिवासी समाज की सदस्या है ,उस समाज के लिए एक गोत्र में विवाह वर्जित है और अपराध भी। इसलिए रेशमा जानती थी कि इतने

निकट संबन्ध को अपना समाज कभी स्वीकार नहीं करेगा। रेशमा की माँ को भी पता चलता है कि अपनी बेटी गर्भवती है। इसलिए अपमान के भय से सोमरा और रेशमा अपने गाँव से ओड़िशा भाग लेने का इरादा लेते हैं।

स्त्री पर अत्याचार करनेवाले अपराधियों को माकूल दण्ड नहीं मिलता । सोमरा से धोखा खाकर अत्याचारियों की हवस का शिकार बनी रेश्मा अपने प्राणों को गंवा देती है। लेकिन इस बात पर उसके घरवाले यहाँ तक कि पूरा गाँव भी अपना मुँह बंद कर बैठते हैं।

तेली मेचा की 'मैं हमेशा साथ हूँ' अपने ही परिजनों और समाज के निर्मम हरकतों से बर्बाद हुई आदिवासी स्त्री की ज़िन्दगी की दर्दनाक दास्तान है। जोरम बस्ती के एक संयुक्त परिवार में जन्मी युपु को छोटे कुल के तागिन से प्रेम हो जाती है। इसलिए दूसरे गाँव के प्रतिष्ठित व्यक्ति के साथ अपना रिश्ता तय करने की ख़बर पाकर युपू तागिन के साथ भाग जाती है। इसी वजह से उन दोनों को अपने गाँव और परिवार से निष्कासित कर दिया जाता है। लेकिन वे दोनों अपना दुख - दर्द भूलकर जंगलों और पहाड़ों में कड़ी मेहनत कर अपनी ज़िन्दगी को आगे बढ़ाते हैं। इसी बीच युपू दो बच्चों की माँ बन जाती है जिन्हें वे प्यार से नगा और आबू कहकर पुकारते थे। परिवार की ज़रूरतें बढ़ने से तागिन कहीं दूर जाकर खेती करने का निर्णय लेता है। ज़मीन को खेती योग्य बनाने हेतु तागिन पहाड़ के पेड़ों को काटकर आग लगा देता है। पूरा पहाड़ एक दिन में साफ हो जाता है। लेकिन बची आग की लपटें दूसरे पहाड़ को भी अपने कब्ज़े में कर देती हैं। आग में गाँववालों के खेत ही नहीं बल्कि खेत में बना 'ताबो' (खेत में आराम के लिए छोटा घर) में रखे मिथुन की दस सींगें भी जल जाती हैं। इसी वजह से गाँववाले गुस्से में आकर तागिन को बुरी तरह मारते हैं। गाँववालों में युपू का छोटा भाई कान्या भी शामिल था। युपू सबके पैर में गिरकर इस गंभीर समस्या को शांति से सुलझाने की विनती करती है। फिर भी गाँववाले तागिन,युपू और उनके दोनों बच्चों के साथ निर्ममता से पेश आते हैं। वे उन लोगों को घसीटकर जोराम बस्ती ले जाते हैं। गाँववालों की शिकायतें सुनने के बाद युपू के पिताजी उनको उचित मुआवज़ा दिलाने का वादा करते हैं। लेकिन युपू की वजह से अपने ऊपर लगे दाग को पोंछने के लिए अपनी बेटी होने के बावजूद युपू के परिवार को बर्बाद करने का षड्यन्त्र रचते हैं। युपू के भाई लान्या और कान्या भी उनका साथ देते हैं। इसी के तहत तागिन,युपू और उनके दोनों बच्चों को हमेशा के लिए जुदा कर देते हैं। युपु को ईटानगर के एक आदमी को सौदा कर देते हैं। और कोई रास्ता न होने की वजह से उस आदमी की तीसरी पत्नी बनकर युपू उसके साथ बस जाती है। फिर भी तागिन और अपने बच्चों की यादें उसे बहुत सताती हैं। बाद में बेटी पैदा होने के बाद वह अपने-आपको संभालती है। युपू की बेटी अपनी माँ की जिन्दगी की सच्चाई से वाकिफ है। अपनी बेटी के मुँह से एक बार गलती से 'तागिन' शब्द निकलने पर युपू को उसके पति बेरहमी से मारते हैं। बुरी तरह घायल युपू बिस्तर से उठने के लिए असमर्थ बन जाती है । समय गुज़रने के साथ युपू अपना मानसिक संतुलन खो देती है । फिर भी तागिन और अपने दोनों बच्चों की यादें आखिरी साँस तक उसमें ज़िन्दा रहती हैं।

विश्वासी एक्का की 'बदरूहांसदा 'में जस्सी हंसदा के माध्यम से अपने उपर हुए अत्याचार को साहस के साथ सामना कर जीवन को नए सिरे से ढालती नारी से हमारा साक्षात्कार होता है। जस्सी अपने घर में बकरी खरीदने आए बदरुद्दीन अंसारी से धोखा खाती है। गर्भवती बनी जस्सी से बदरुद्दीन बच्चे को गिरा देने का उपदेश देता है । जस्सी की माँ भी उसको वही सलाह देती है। लेकिन जस्सी किसी की बात मानने को तैयार नहीं होती है। वह बदरुद्दीन का रास्ता देखना भी छोड़ देती है। जस्सी की माँ स्कूल की चपरासी केंदा मुंडा और जचकी कराने वाली सुखो दाई के साथ मिलकर जस्सी के बच्चे को उससे हमेशा के लिए दूर कराने का षड्यंत्र रचती हैं। लेकिन जस्सी की ममता के सामने आखिर उनका मन पिघल जाता है। बच्चे के जन्म के बाद जस्सी अपने - आप में सिकुट जाती है और समाज का सामना करने के लिए असमर्थ बन जाती है। घर ही उसका संसार बन जाता है। लेकिन जस्सी की माँ उसका हौसला बढ़ाती हैं। इसके फलस्वरूप जस्सी दिन के उजाले में बाहर निकलती है। अपने समाज का सामना करती है। मनचलों के 'बदरू हंसदा' पुकार की ओर भी वह कान नहीं देती है। गाँववाले जस्सी का बच्चा अलादीन के मुँह से उसके बाप के बारे में जानने के कई तरीके अपनाते हैं। लेकिन आखिर अलादीन के मुँह से ही वे जान लेते हैं कि बदरुद्दीन नामक व्यक्तिजस्सी की ज़िन्दगी

में कोई मायना नहीं रखता। वह तो उसके लिए हमेशा के लिए मर चुका है। अपनी बीमार माँ की देखभाल और अलादीन की परवरिश के लिए जस्सी रोज़ अपनी चार बकरियों को चरवाहे का हवाला कर हँडिया बेचती है। अपनी माँ और बेटे के लिए वह केंदा मुंडा के विवाह के प्रस्ताव को भी टुकरा देती है। माँ के मरने के बाद जस्सी पूरी तरह टूट जाती है। ऐसे में केंदा मुंडा जस्सी और अलादीन की ज़िन्दगी को पुख्ता आधार प्रदान करने हेतु उसके सामने अलादीन को शिक्षा प्रदान करने का प्रस्ताव रखता है। केंदा मुंडा की बातों को सही मानकर जस्सी अलादीन को स्कूल में भर्ती कराती है। गरीबी और अभाव से उभरने के लिए जस्सी का भाई रीझन रोज़गार की तलाश में मंबई जाता है और समुद्र से रेत निकालकर खूब पैसा कमाता है। लेकिन समुद्र के पानी से संक्रमण होने से उसका स्वास्थ्य बिगड़ जाता है और उचित इलाज के बिना उसकी मृत्यु हो जाती है। जस्सी की माँ भी ठीक उपचार न मिलने से चल बसती है। इसलिए जस्सी अपने बेटे को डॉक्टर बनाना चाहती है। आखिर उसका सपना साकार हो जाता है। डॉक्टर बने अलादीन जब केंदा मुंडा का इलाज करने की इच्छा प्रकट करता है तब केंदा मुंडा का कथन हमें ज़रूर सोचने के लिए विवश करता है - "मेरा इलाज तो ठीक है लेकिन तुम बताओ, इस बीमार समाज का इलाज करने वाले डॉक्टर नहीं होते क्या, मुझसे ज्यादा इस समाज को इलाज की जरूरत है।"[7]

संक्षेप में, समकालीन कहानियों में आदिवासी स्त्री के अस्मिता संकट के मूल कारणों की सशक्तअभिव्यक्ति हुई है। ऐसी कहानियाँ आदिवासी स्त्री की जन्दिगी की भीषण असलियत और उनके संघर्ष को उजागर करती हैं। अपने अंधेरे भरे वर्तमान को आत्मबल के सहारे परास्त कर ज़िन्दगी में नई ऊर्जा भरती आदिवासी स्त्रियों की उपस्थिति भी इन कहानियों में हम देख सकते हैं। आदिवासी स्त्रियों के जीवन की परतें खोलती ऐसी कहानियाँ ज़ाहिर करती हैं कि आदिवासी स्त्री की अस्मिता को विनष्ट करनेवाली ताकतों के प्रति हमें सजग होना है। अपनी अस्मिता को सुरक्षित रखने के लिए आदिवासी स्त्री को काबिल बनना है। उसको समाज की मुख्यधारा में शामिल होने और मानवोचित जीवन जीने का हक है। आदिवासी औरतों की ज़िन्दगी में बहुमुखी विकास लाने के लिए समाज के नज़रिए में बदलाव बेहद ज़रूरी है।

संदर्भ

1. पीटर पौल एक्का एस.जे - परती जमीन - पृ . 4
2. वही पृ.7
3. डॉ.फ्रांसिस्का कुजूर मूसल फूल खिलते रहेंगे- पृ.54,
4. वही पृ. 56 57
5. जसिंता केरकेट्टा-रेशमा वागर्थ वर्ष 29अंक 329 अप्रैल 2023
6. वही
7. विश्वासी एक्का - बदरू हांसदा- पक्षधर वर्ष :12 संयुक्तांक :25, 26 जुला.-दिसं.2018 जन.-जून.2019 पृ. 300

हिन्दी अध्यापिका , जी.यू.पी स्कूल पोन्मला,
मुट्टिप्पालम, मलप्पुरम जिला, पिन : 676528

डॉ कमल किशोर गोयनका ब्रह्मलीन हो गए...

विख्यात साहित्यकार डॉ कमल किशोर गोयनका ब्रह्मलीन हो गए। प्रेमचंद साहित्य के सर्वोत्तम विद्वान व अनुसंधित्सु के रूप में आप विख्यात रहे। प्राध्यापक व लेखक के रूप में आपकी अटूट ख्याति थी। 11 अक्तूबर 1938 को बुलंद शहर (उत्तर प्रदेश) में जन्मे गोयनका जी का निधन 01 अप्रैल 2025 को हुआ। कई दिनों से उन्हें सांस संबंधी तकलीफें थीं। उनकी स्मृतियों पर समूचे केरल ज्योति परिवार की भावभीनी श्रद्धांजलियाँ !

मंत्री, केरल हिंदी प्रचार सभा

किन्नर समुदाय : संघर्ष, पहचान और उपलब्धियों का काव्य विमर्श

डॉ गोपकुमार जी

साहित्य केवल शब्दों का खेल नहीं है; यह समाज की धड़कनों को महसूस करने और उसकी गहराईयों में छिपी वेदनाओं को उजागर करने का सबसे सशक्त माध्यम है। समाज के हर कोने में फैली असमानता, तिरस्कार और शोषण की दास्तानें जब साहित्य में समाहित होती हैं, तो वे सिर्फ कहानियाँ नहीं रह जातीं, बल्कि विद्रोह की गर्जना बन जाती हैं। आज का साहित्य विमर्शों का युग है, और इन अस्मितामूलक विमर्शों ने उन आवाज़ों को मंच दिया है, जिन्हें सदियों से चुप रहने पर मजबूर किया गया था। इन्हीं में से एक अनसुनी और अनदेखी आवाज़ है किन्नर समुदाय की वह समुदाय, जो जन्म से लेकर मृत्यु तक समाज के तिरस्कार और उत्पीड़न का शिकार होता रहा है।

'किन्नर विमर्श' का उभरना न केवल साहित्य की एक बड़ी क्रांति है, बल्कि यह उस नृशंस सामाजिक व्यवस्था पर सीधा प्रहार भी है, जिसने इस समुदाय को हाशिए पर धकेल दिया। साहित्य ने किन्नर समुदाय की पीड़ा, उनकी अदृश्य लड़ाई और अस्तित्व के संघर्ष को प्रकाश में लाने का काम किया है। अप्रैल 2014 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा थर्ड जेंडर को कानूनी पहचान दिए जाने के बावजूद, समाज में उनकी स्थिति आज भी बदहाल है। उनकी ज़िंदगी केवल तिरस्कार और उपेक्षा की त्रासदी नहीं है; यह उस समाज का भी दर्पण है, जो आज भी समानता और मानवीय अधिकारों के मूल्यों को पूरी तरह आत्मसात नहीं कर पाया है।

प्राचीन भारत में, किन्नरों को देवताओं का वरदान माना जाता था, उनकी उपस्थिति शुभ और मंगलकारी मानी जाती थी। वे राजा-महाराजों के दरबारों की शोभा थे, समाज के रीति-रिवाजों का अनिवार्य हिस्सा थे। लेकिन समय के साथ, इस दिव्यता को अंधविश्वास और तिरस्कार की धुंध ने निगल लिया। आज, वही किन्नर जो कभी देवी-देवताओं का आशीर्वाद माने जाते थे, समाज की काली परछाईं में छिपा दिए गए हैं। एक ऐसा समाज, जो कभी उन्हें सम्मान से नवाजता था, अब उन्हें 'अशुभ' और 'अयोग्य' मानकर अपने ही आंगन से बहिष्कृत कर चुका है। यह सिर्फ उनकी पहचान का नहीं, बल्कि मानवता का भी अपमान है,एक समाज की क्रूरता का ऐसा घिनौना चेहरा, जो इस समुदाय से उनके जीने का अधिकार तक छीन लेना चाहता है।

जब किन्नर अपनी पहचान की खोज में तड़पते हैं, जब उनके अस्तित्व की अनसुनी चीखें समाज की दीवारों से टकरा-टकराकर लौट आती हैं, तब उनकी वेदनाएँ कविता की क्रांति बन जाती हैं। हिंदी कविता ने उस चीख को सुनने का साहस किया है, जिसे समाज ने सदियों से अनसुना किया था। ये कविताएँ केवल शब्द नहीं हैं यह उस पीड़ा की आग है, जिसने किन्नर समुदाय के दिलों को जलाया है। यह उनकी अनदेखी, उनके संघर्ष और उनके अस्तित्व की लड़ाई की सजीव गवाही है। हर कविता एक युद्धघोष है, हर पंक्ति उनके अधिकारों के लिए एक शंखनाद।

हमारे समाज की सीमित सोच केवल स्त्री और पुरुष को ही स्वीकारती है, जबकि लैंगिक विविधता के साथ जन्मे लोगों को कई अपमानजनक नामों से पुकारकर उन्हें सामाजिक किनारे पर ढकेल दिया जाता है। एक किन्नर के रूप में जन्म लेने का मतलब है संघर्ष की एक नई कहानी का आगाज़, जो सबसे पहले अपने घर की चारदीवारी में शुरू होती है, जहाँ केवल अपमान और तिरस्कार का सामना करना पड़ता है। इसका वर्णन इन पंक्तियों में देखने को मिलता है-

"गुनाह बताओ उस बच्चे का,/उसने क्या अपराध किया/ सजायाफ्ता-सा, माँ-बाप ने अलग किया/अलग बना दी बस्ती उसकी,/अलग जहान दिया/बीच समाज से होते उनको/समाजविहीन किया।"[1]

किन्नर होने के कारण जन्म से मिलने वाला यह भेदभाव बचपन में और भी बढ़ जाता है। किन्नर बच्चे अक्सर परिवार और समाज से अस्वीकृति का सामना करते हैं, जिससे उनके आत्म-सम्मान और मानसिक विकास पर गहरा असर पड़ता है। भारत में, अधिकांश सार्वजनिक शौचालयों में केवल पुरुषों और महिलाओं के लिए अलग-अलग सुविधाएँ होती हैं, जबकि किन्नरों के लिए कोई उचित व्यवस्था नहीं होती। इस वजह से, किन्नर बच्चे अक्सर शौचालय का उपयोग करने में असमर्थ होते हैं और कई बार उन्हें गंदगी या अपमानजनक स्थितियों का सामना करना पड़ता है। यह न केवल उनकी शारीरिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है, बल्कि स्कूलों में अपमान और तिरस्कार के चलते उनकी शिक्षा पर भी नकारात्मक प्रभाव डालता है। इस भावना का उदाहरण 'हिजड़ा कहते ही' कविता की पंक्तियों में मिलता है- "हिजड़ा कहते ही हर रंग को जैसे काठ मार जाता/बिखर जाती फूलों की खुशबू कलियाँ चटकना भूल जाती/हिजड़ा कहते हो दुःखों की एक नदी बहती है/ जिसे समुद्र में मिलना नहीं होता।"[2]

फिर भी, किन्नर बच्चे अपने अधिकारों और पहचान के लिए संघर्ष करते रहते हैं, लेकिन किशोरावस्था में पहुँचते-पहुँचते वे अपने परिवारों और समाज के लिए एक बोझ बन जाते हैं। इस उम्र में, जब उनकी पहचान और लैंगिकता का विषय अधिक स्पष्ट होता है, तब अक्सर उन्हें तिरस्कार और भेदभाव का सामना करना पड़ता है।वे अपने जीवन में प्रेम और विवाह जैसे मौलिक अनुभवों से वंचित रहना एक सामान्य स्थिति बन जाती है। समाज द्वारा उन्हें जिन भेदभावों का सामना करना पड़ता है, वे अक्सर उनके लिए ऐसे संबंधों की कल्पना को भी दुष्कर बना देते हैं। यद्यपि वे प्यार की इच्छा रखते हैं, समाज की पूर्वधारणाएँ और अस्वीकार्यता उन्हें उन संबंधों से दूर कर देती हैं, जिनकी वे चाह रखते हैं।

असल में कई किन्नर प्रेम के लिए तरसते हैं, लेकिन उन्हें अक्सर यह विश्वास दिलाया जाता है कि उनका प्रेम स्वीकार्य नहीं होगा। इसके फलस्वरूप, वे अकेलेपन और मानसिक तनाव का अनुभव करते हैं, जो उनके जीवन को और भी कठिन बना देता है। इस प्रकार, प्रेम और विवाह जैसे महत्वपूर्ण मानवीय अनुभवों से वंचित रहकर, किन्नर समुदाय के सदस्य न केवल अपनी पहचान के लिए संघर्ष करते हैं, बल्कि भावनात्मक रूप से भी असुरक्षित महसूस करते हैं। इस अस्वीकृति के चलते, उनकी आत्मा में एक गहरी उदासी और निराशा घर कर जाती है, जो उनके जीवन की खुशियों को प्रभावित करती है। 'गोधूली' कविता में इस दयनीय स्थिति का विवेचन स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है- "शहनाई कुचली लोगों ने,/कुटिल हंसी - हंस दी रोगों ने/फिर कहार उन्मत्त हो गए,/कौन उड़ाए लाली को,/हाय सिंदूरी डोली?"[3]

एक ओर, किन्नरों के जीवन में मानसिक द्वंद्व चलते हैं, तो दूसरी ओर, माता-पिता की चिंताएँ भी बढ़ती जाती हैं। वे अपने बच्चों के भविष्य को लेकर चिंतित रहते हैं, यह सोचते हुए कि समाज उन्हें कैसे स्वीकार करेगा। माता-पिता अक्सर इस डर से ग्रस्त होते हैं कि उनके बच्चे अस्वीकार किए जाएंगे या सामाजिक भेदभाव का सामना करेंगे। इस प्रकार, दोनों पक्षों के बीच एक जटिल रिश्ते का निर्माण होता है जहां किन्नर अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ते हैं, वहीं माता-पिता अपने बच्चों के लिए सुरक्षा और स्थिरता की कामना करते हैं। यह द्वंद्व न केवल परिवार के सदस्यों के लिए बल्कि समाज के लिए भी एक गहरी चुनौती पेश करता है, जो समानता और स्वीकार्यता की दिशा में आगे बढ़ने में कठिनाई महसूस करता है। ' एक किन्नर की माँ की व्यथा ' कविता में यह साफ तौर पर देखा जा सकता है- "लोक नज़र सही न जाय/मां की पीर कही न जाय/भले गृहस्थी बना न पाय/ऐसा चमक सही न जाय।"[4]

कई माता-पिता समाज के दबाव में अपने बच्चों की लैंगिकता को छिपाने के लिए उन्हें बाल विवाह के बंधन में डालने का निर्णय लेते हैं। उनका मानना होता है कि इस तरह के विवाह से उनके बच्चों को सामाजिक स्वीकृति मिलेगी और वे एक सामान्य जीवन जी सकेंगे। जब ये विवाह टूटते हैं, तो किन्नरों को न केवल अपमान का सामना करना पड़ता है, बल्कि उन्हें अपने परिवारों से भी और दूर कर दिया जाता है। ऐसे में, वे खुद को और अधिक अकेला और असुरक्षित महसूस करते हैं। इस प्रक्रिया में,

न केवल उनकी पहचान को चोट पहुँचती है, बल्कि उनका आत्म-सम्मान भी कमजोर होता है। इस दयनीय अवस्था का संकेत गीतिका वेदिका कृत ' गोधूली ' कविता में स्पष्ट रूप से उजागर किया गया है - "आँखों में है अगन मची,लौट गयी बारात सजी/रोते हल्दी और महावर,/मेहंदी रह गयी धरी रची/औ' वधु बालिका भोली।"[5]

इस प्रकार, बाल विवाह के नाम पर किए गए ये प्रयास न केवल उनके लिए शारीरिक बंधन बनाते हैं, बल्कि मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य के लिए भी हानिकारक सिद्ध होते हैं, जिससे उनके भविष्य में और भी अनिश्चितता बढ़ जाती है।

परिणामस्वरूप उनके जीवन में एक ऐसा मोड़ आता है, जब वे अपने परिवारों से पूरी तरह से निष्कासित हो जाते हैं। जैसे ही कोई किन्नर अपने परिवार की चारदीवारी से बाहर कदम रखता है, उसके भीतर एक तूफान उठ खड़ा होता है आशंका, भय और अनिश्चितता का बवंडर। क्या मेरे अपने मुझे अपनाएँगे, या वे भी इस निर्दयी समाज की तरह मुझे ठुकरा देंगे? हर कदम जैसे सवालों के काँटे बन जाते हैं क्या इस दुनिया में मेरे लिए कोई जगह है, या मेरा जीवन सिर्फ तिरस्कार और बहिष्कार की काली छाया में ही बीतेगा?

"अधूरी देह क्यों बनाया/बता ईश्वर! तुझे ये क्या सुहाया?/ नहीं नारी हूँ मैं,और नर नहीं हूँ/विवश हूँ मूक हूँ, पत्थर नहीं हूँ।"[6]

परिवार,जो किसी इंसान के अस्तित्व और उसकी पहचान की पहली नींव होती है जब वही नींव डगमगा जाए, तो वह किन्नर न सिर्फ अपना घर खो देता है, बल्कि अपनी पहचान, अपना सब कुछ खो बैठता है। यह अस्वीकार उसके जीवन का सबसे गहरा घाव बन जाता है, एक ऐसा घाव जो कभी भरता नहीं। वह अपने अंदर एक ऐसा दर्द छुपाए रखता है, जो न उसे चैन से जीने देता है, न मरने। इस समाज में अपनी जगह बनाने की उसकी हर कोशिश एक युद्ध बन जाती है, जहाँ वह अकेला लड़ता है, अपनों के खिलाफ, दुनिया के खिलाफ, और खुद के खिलाफ। जैसे कवि लक्ष्मी नारायण ने कहा, "हम कौन हैं?/कहाँ है हमारी पहचान?/न हम पुरु ष हैं, न स्त्री।/फिर कौन हमें अपनाएगा?/हमारा अस्तित्व क्या है?"[7]

यह किन्नरों की भावना को बखूबी व्यक्त करता है, जहाँ उनके अरमानों की उड़ान को समाज की संकीर्ण सोच ने रोक दिया है।

उनकी कहानियाँ एक मूक चीख की तरह होती हैं, जो समाज के कानों तक पहुँचने में असमर्थ होती हैं। इन कहानियों में दर्द, भय, और असहायता की गहरी गूंज होती है। यौन हिंसा की इस आग में झुलसते हुए, वे न केवल शारीरिक रूप से विकृत होते हैं, बल्कि मानसिक रूप से भी बर्बाद हो जाते हैं। यह अनुभव उन्हें एक ऐसी गहरी खाई में धकेल देता है, जिससे लौटना असंभव सा लगता है।

"यौवन आने पर/लोभी,कामी-/उसके/आगे - पीछे घूमते/ मतलबी चूमते।"[8]

जितना भयावह शारीरिक शोषण है, उतना ही भयानक उसके परिणाम हैं। कई किन्नर HIV जैसी जानलेवा बीमारियों का शिकार होते हैं, जो उनके जीवन को एक अंधेरी दहलीज पर ले जाती है। यह बीमारी न केवल उनके शरीर को कमजोर करती है, बल्कि उन्हें सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से भी अपंग बना देती है।

समाज में, जहाँ उनकी आवाज़ें अक्सर दबा दी जाती हैं, किन्नरों की जिंदगी एक निरंतर संघर्ष की कहानी बन जाती है। वे हर दिन अपनी पहचान के लिए लड़ते हैं, जबकि उनके आस-पास की दुनिया उनके अस्तित्व को नकारती रहती है। इस निराशाजनक स्थिति में, वे अकेले होते हैं, एक ऐसे अंधेरे में जहाँ से निकलने का कोई रास्ता नहीं दिखता। यह एक अनसुलझी कहानी है, जो हर पल दर्द और असमानता के साथ जीवित रहती है। इस मुद्दे की गहराई 'अस्तित्व और पहचान ' के इस अंश में उजागर होती है -"मत कर ऐसा बर्ताव/ ऐ रहमदिल दुनियांवालों/ मैं भी एक जीता जागता इंसान हूँ,/तुम्हारी तरह।"[9]

कई बीमारियों की जाँच के लिए जब किन्नर समुदाय के लोग अस्पतालों में चिकित्सा सेवाओं का सहारा लेने जाते हैं, तो उन्हें अक्सर उचित चिकित्सा सहायता की कमी

के साथ-साथ अपमान और तिरस्कार का भी सामना करना पड़ता है। उनके सामने एक ऐसी दीवार खड़ी होती है, जो न केवल उनके अधिकारों को दरकिनार करती है, बल्कि उनकी इंसानियत को भी चुनौती देती है। जब वे डॉक्टर से मदद की गुहार लगाते हैं, तो कई बार उनकी पहचान के कारण हीन भावना से भरी नजरों का सामना करना पड़ता है, जो उन्हें असुरक्षित और असहाय महसूस कराती है। यह स्थिति न केवल उनके स्वास्थ्य के लिए खतरनाक है, बल्कि उनके आत्मसम्मान को भी गहरा आघात पहुँचाती है।किन्नरों की इसी व्यथा और मनोदशा को मेरे हमदम कविता में अभिव्यक्त किया गया है - "जन्म लेकर तो अभिशप्त जीवन मिला दुनिया में पर,/मरना भी हुआ दुष्कर/क्यों किया तूने यह भेदभाव विधाता,/जहाँ टूट रहा है मनोबल प्रतिपल।"[10]

किन्नरों की इस स्थिति का मुख्य कारण समाज में उनके प्रति गहरी जड़ें जमा चुकी पूर्वाग्रह और भेदभाव है। उनके जीवन में बेरोजगारी और शिक्षा की कमी एक गंभीर संकट पैदा करती है, जिससे उनका सामाजिक और आर्थिक सशक्तिक्करण बाधित होता है। जब ये स्कूल और कॉलेजों में अपने लिंग के कारण भेदभाव का शिकार होते हैं, तो उनकी प्रतिभा और कौशल को दबा दिया जाता है। इस तरह की भेदभावपूर्ण स्थिति उन्हें अक्सर यौन काम करने पर मजबूर कर देती है, जिससे उनकी गरिमा को ठेस पहुँचती है। यह एक निरंतर चक्र में धकेलता है, जहाँ न तो उनकी सुरक्षा होती है और न ही भविष्य की कोई संभावना। इस शिक्षा और रोजगार के अभाव में वे अपने अस्तित्व को बचाने के लिए मजबूर हो जाते हैं, जबकि समाज की नजर में उनकी पहचान और योग्यता का कोई मूल्य नहीं रह जाता।

आवास की अनुपलब्धता के कारण किन्नरों के लिए सड़क पर जीवन बिताना एक निरंतर संघर्ष बन गया है, जहाँ उन्हें हर दिन असुरक्षा, अपमान और कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। वे लोग, जो कभी अपने परिवार के सदस्यों की तरह सम्मान के साथ जीते थे, अब गंदगी और निराशा के बीच बेतरतीब जीवन जीने पर मजबूर हैं। उनकी जिंदगी का हर दिन एक जंग की तरह होता है, जहाँ जीने की बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उन्हें अपनी गरिमा को दांव पर लगाना पड़ता है। यह स्थिति उनके आत्मसम्मान को और भी निचोड़ती है, और उन्हें एक ऐसी दुनिया में छोड़ देती है, जहाँ उनके लिए कोई सुरक्षित ठिकाना नहीं है।दयनीय अवस्था का यह संकेत 'अस्तित्व और पहचान' में स्पष्ट रूप से उजागर किया गया है।

"हाँ ! हम जुदा हैं/तुमसे अगर तो/फकत इतने कि/हम नहीं फैलाते भ्रष्टाचार/नहीं करते किसी बेबस पर वार/न फैलाते व्यभिचार/करते नहीं किसी नारी का बलात्कार।"[11]

कहीं से सहारा न मिलने के कारण जब किन्नर धार्मिक स्थलों की ओर जाते हैं, तो वहां भी उन्हें भेदभाव का सामना करना पड़ता है। पूजा-पाठ का माहौल, जहाँ सभी को समानता से देखा जाना चाहिए, वहाँ अक्सर उन्हें अपमानित किया जाता है। उदाहरण के लिए, कई किन्नर अपनी धार्मिक आस्था को व्यक्त करने के लिए मंदिरों में जाते हैं, लेकिन उन्हें वहाँ या तो प्रवेश से रोका जाता है या उन्हें तिरस्कार का सामना करना पड़ता है। इस प्रकार का भेदभाव उनकी आत्मा पर गहरी चोट करता है और उन्हें समाज से और अधिक अलग-थलग महसूस कराता है। इस अस्वीकृति की भावना उनकी पहचान और आत्म-सम्मान को गंभीर रूप से प्रभावित करती है, जिससे उनके मानसिक स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

यूँ न देखो/हमें नफरत भरी/निगाहों से/न धिक्कारों हमें/यूँ गैरों की तरह/हाँ !/हम भी तुम्हारी तरह/उसी मालिक की रचना हैं/किन्नर हैं/इसमें कहाँ दोष है हमारा ?"[12]

इन सभी परिस्थितियों के कारण, किन्नरों में आत्म-सम्मान की कमी का एक दुखद चक्र उत्पन्न होता है, जो कई बार आत्महत्या की प्रवृत्तियों को जन्म देता है। मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं की अनुपलब्धता के चलते, कई किन्नर अपनी समस्याओं को अकेले ही सहन करने को मजबूर होते हैं, जिससे उनकी स्थिति और भी गंभीर हो जाती है।

"मानस भी टूटा/जीवन भी रूठा/है बड़ी भयावह/मृत्यु की आकृति/स्वीकार करो नियति।"[13]

हालांकि, कुछ किन्नर इस सामाजिक असमानता के खिलाफ उठ खड़े होते हैं। वे शिक्षा, रोजगार और अन्य क्षेत्रों में अपने अधिकारों के लिए संघर्ष कर रहे हैं, और ऐसे संगठन भी सक्रिय हैं, जो उनके अधिकारों की रक्षा के लिए काम कर रहे हैं, जैसे 'अंतर्राष्ट्रीय किन्नर अधिकार संगठन'। लेकिन उनके प्रयासों को समाज के कई हिस्सों में अस्वीकार कर दिया जाता है, जिससे उनके संघर्ष को और भी चुनौती मिलती है। जब किन्नर अपनी पहचान और अधिकारों के लिए खड़े होते हैं, तब वे समाज में जागरूकता फैलाने का एक महत्वपूर्ण काम करते हैं, जिससे धीरे-धीरे उनके खिलाफ फैली पूर्वाग्रहों को चुनौती मिलती है।

आखिरकार, यह हमारी जिम्मेदारी है कि हम किन्नरों के अधिकारों का सम्मान करें और उन्हें समाज का अभिन्न हिस्सा मानें। हमें यह समझना होगा कि हर व्यक्तिका जीवन महत्वपूर्ण है, चाहे उनकी पहचान कुछ भी हो। उनकी गरिमा और अधिकारों की सुरक्षा के लिए जागरूकता फैलाना हम सबकी नैतिक जिम्मेदारी है। यह समझ हमें एकजुट करने का कार्य करेगी, ताकि हम सभी के लिए एक समान और सम्मानजनक जीवन सुनिश्चित कर सकें। जब हम किन्नरों को स्वीकार करते हैं और उनकी आवाज़ को सुनते हैं, तब हम एक ऐसा समाज बनाते हैं जिसमें सभी के लिए समान अवसर और सुरक्षा हो।कवि कहते है कि- "वो जन्मजात/ 'किन्नर'(बुचारा) है/स्त्रीत्व का भाव/इसके अंदर भरा है,/ स्वभाव में, खरा है।"[14]

इस प्रकार, हमें उनकी गरिमा और अधिकारों का सम्मान करना चाहिए, ताकि हम एक ऐसी दुनिया बना सकें, जहाँ हर व्यक्तिको समानता और सम्मान मिले। यह आवश्यक है कि समाज उन्हें वह स्थान दे, जिसके वे हकदार हैं, ताकि वे भी अपनी पहचान को गर्व के साथ जी सकें। अगर हम एक साथ खड़े हों, तो हम एक ऐसी दुनिया का निर्माण कर सकते हैं जहाँ हर इंसान को अपनी पहचान, गरिमा, और सुरक्षा का अधिकार मिले। यह एक नई शुरु आत की ओर बढ़ने का समय है, जहाँ हम सभी मिलकर एक समृद्ध और समावेशी समाज का निर्माण कर सकें।

निष्कर्ष : हिंदी कविता में किन्नर समुदाय का चित्रण समाज में उनके संघर्ष, उपेक्षा और अस्तित्व की जटिलता को उजागर करता है। कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से किन्नरों की पीड़ा, उनकी संवेदनाओं और सामाजिक अस्वीकृति को सजीव किया है। हिंदी कविता किन्नर समुदाय के प्रति न केवल सहानुभूति व्यक्तकरती है, बल्कि उनके अधिकारों और गरिमा की पुनःस्थापना की आवश्यकता पर भी बल देती है। यह साहित्यिक योगदान समाज को उनके प्रति संवेदनशीलता विकसित करने और उन्हें समानता व सम्मान के साथ स्वीकारने के लिए प्रेरित करता है। किन्नरों पर आधारित काव्य लेखन समाज के हाशिए पर खड़े इस समुदाय की आवाज़ बनकर सामाजिक बदलाव की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. किन्नर व्यथा ,पूजा बंसल, (संपादनः डॉ.विजयेंद्र प्रताप सिंह, अस्तित्व और पहचान) पृष्ठ सं :120
2. हिजड़ा कहते ही,राजकिशोर यादव ; अस्तित्व और पहचान पृष्ठ सं :13
3. गोधूली, गीतिका 'वेदिका'; अधूरे देह,पृष्ठ सं :66
4. एक किन्नर की माँ की व्यथा ; अस्तित्व और पहचान,पृष्ठ सं :120
5. गोधूली, गीतिका 'वेदिका', अधूरे देह, पृष्ठ सं :67
6. अधूरे देह, गीतिका 'वेदिका'अधूरे देह, पृष्ठ सं :13
7. हम कौन है, लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी; अज्ञात,पृष्ठ सं :31
8. किन्नर एक रूप अनेक , चक्रधर शुक्ल ; अस्तित्व और पहचान पृष्ठ सं :26
9. मेरे हमदम,संगीता सिंह भावना; अस्तित्व और पहचान, पृष्ठ सं :48
10. वही पृष्ट सं : 49
11. किन्नरों पर 11 कविताएं, डॉ. लता अग्रवाल; अस्तित्व और पहचान, पृष्ठ सं : 123
12. वही,पृष्ठ सं : 121
13. नियति, गीतिका 'वेदिका'; अधूरे देह, पृष्ठ सं:65
14. किन्नर एक रूप अनेक , चक्रधर शुक्ल ; अस्तित्व और पहचान पृष्ठ सं :25

सह आचार्य, हिंदी विभाग

सरकारी बी जे एम कॉलेज, चवरा, कोल्लम

कहानी

ललक

कीर्ति अनिल

नवंबर का महीना था। छुट्टियों के दिन में ज्यादातर जल्दी उठती हूँ, पर कुछ दिनों से पता नहीं क्यूँ थकावट सा लग रहा है। सुबह-सुबह उठने में भी बहुत मुश्किल हो रही है। पर चलो, अगर कोई बहाना करके देर हो भी जाए, तो शहर पहुँचने में शाम हो जाएगी। ग्यारह बजे मुझे कक्षा में भी पहुँचना है न। जैसे कि मैंने कहा, छुट्टियों का समय है, इसलिए सोचा कि कुछ कोर्स कर लेती हूँ। समय भी बर्बाद नहीं होगा और मन भी लगा रहेगा।

जाऊँ या न जाऊँ सोच-सोच कर देर कर दी। जल्दी-जल्दी नहा धोकर तैयार हुई और डाइनिंग टेबल पर जैसे वैसे करके बैठ गई, जैसे की मानो कि तो खाने पर कोई एहसान कर रही हूँ। बिना मन के ऐसा खा रही हूँ कि अगर भोजन को जीवन होता, तो वे मुझे एक ज़ोर का तमाचा मार दिया होता। मैं भी कभी-कभी सोचती हूँ कि भला ऐसे कोई खाता है क्या? पर क्या करूँ मैं ऐसी ही हूँ। मुझे नहीं लगता कि इस मामले में, मैं कभी सुधारूँगी।

जैसे तैसे करके बस पकड़ी। क्या करें? कुछ लोगों को, बहुत जगह है बस में, पर क्या करे! उन्हें या तो कंदा में छूना है या हाथों में चिपकना है। घूरने का भाषा भी इन्हें समझ नहीं आता। इनसे बात करके भी कोई फ़ायदा नहीं है। जानती हूँ सहना गलत है, पर क्या करूँ ऐसे लोगों का जो समझकर भी समझना नहीं चाहते। जो नींद में है, उसे जगाया जा सकता है, आसन है ये, पर जो नींद में होने का दिखावा करे, ऐसे लोगों का मामला थोड़ा सा मुश्किल है। शुक्र है भगवान का कि मुझे सीट मिल गई। सीट मिलते ही जान छूटी मेरा इनसे। आँखें बंद ही क्यों न हो, कानों की दशा जब बिगड़ जाती है, तब पता चल ही जाता है, कि आखिर शहर पहुँच ही गया। गाड़ियाँ कितने तेज़ रफ्तार से आगे बढ़ रही है; जैसे दौड़ में संकेत का लोग इंतज़ार करते है, ठीक उसी तरह से, लोग ट्रैफिक का इंतज़ार करते है। बस से उतरने के बाद में नज़ारे थे आसपास, जैसे कि पगडंडी में झुमके का बिक्री हो रही थी, खाने की दुकानें थी और बहुत सारी पुस्तकें, बिकने के लिए ज़मीन पर रखे हुए थे। सच बोलूँ तो यहाँ पर लोगों का एक दूसरे से टकराने की संभावना भी ज़्यादा है। मुझे इस चीज़ का कोई ताज्जुब भी नहीं है, क्योंकि शहर है ये, यहाँ पर कुछ भी हो सकता है।

चलते-चलते एक कपड़े की दुकान के आगे आ गई और वहाँ पर मैंने कुछ ऐसा देख लिया कि मन और पैर दोनों थम से गए। पैर तो फिर भी धीरे-धीरे करके आगे बढ़ रहा था पर न जाने क्यों मन उस तरीके से आगे नहीं बढ़ पा रहा था। मानो कि मैंने अपने मन को पीछे छोड़ दिया हो, जैसे कि मैंने उसे खो दिया हो। चलिए, अब मैं आपको उस नज़ारे के बारे में बताती हूँ। नज़ारा यह था कि एक आदमी, तीस या चालीस का होगा, दिखने में मुझे ऐसा ही लगा, और उनके साथ एक बहुत ही उम्रवाली औरत थी। सरे आम दुकान के सामने ज़मीन पर बैठे हुए खाना खा रहे थे। खाने की बात तो छोड़ो, जहाँ पर लोग बैठने के बारे में भी सोच नहीं सकते, वहाँ पर ये दोनों सरे आम बैठे हुए थे खाना खाने के लिए।

यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि कोई खाना खा रहा है। दुकान के आगे यह सड़क के किनारे, जिस तरीके से लोग खा रहे थे, यह नज़ारा, इसमें मैं थोड़ा सा उलझी हुई हूँ। एक ही पत्ते की दोनों तरफ़ बैठकर, एक तरफ से वह आदमी और दूसरी तरफ़ से वह औरत खाना खा रही थी। बहुत ही कम खाना था, थोड़ा-सा चावल, कुछ अवियल और बची कुछ सब्जी। इतने जल्दी में यह सब कुछ हुआ कि मैं ठीक तरीके से सब कुछ देख भी नहीं पाई। आधा-आधा खाकर उनके पेट भर जाते होंगे क्या? मुझे तो नहीं लगता। पर यह बात तो पक्का पता था कि कुछ समय बाद दुकान के पहेदार, उनके सामान के साथ-साथ, वहाँ से भगा ज़रूर देंगे। वैसे तो कहने लायक उनके साथ कुछ भी नहीं है, बस कुछ कपड़े हैं, जो एक बहुत बड़े से, लंबे से, सफ़ेद कपड़े में समेटे हुए थे।

क्लास के बाद जब वापस आई तो मुझे भी बहुत भूख लग रही थी। तेज़ धूप थी, ऊपर से भी और नीचे से भी। सड़क ताप से जल रही थी। चप्पल पहने के बाद भी पैरों में एक अजीब सी बेचैनी थी। जब मैं वापस आ रही थी, तो वही नज़ारा, फिर से। वही खाना, वही तरीका। मैं तो इस सोच में पड़ गई कि इन्हें खाना कहाँ से मिलता होगा? कौन दे रहा होगा उन्हें खाना? मुझे यह भी नहीं पता। क्या पता शायद इन्होंने ही कहीं से इंतज़ाम किया होगा। ठीक से पता नहीं, पर मुझे अभी सिर्फ इतना पता है कि इन्हें बहुत ज़ोर की भूख लग रही है। एक दूसरे को देख भी नहीं रहे थे। बेचारे, एक दूसरे को देखे बिना ही खाना खा रहे थे।

सवा एक बज चुका था और मुझे बहुत ज़ोर की भूख लग रही थी। होंठ सूख चुके हैं और पेट अपने ही राग आलापने पर तुले हुए है। मेरे दिमाग में सिर्फ एक ही आवाज़ चल रही है, भूख की। भूख के मारे दिमाग भी काम नहीं कर रहा। पता नहीं, घर कब पहुँचूँगी? याद आ रहा है वह दिन, जब अध्यापकों के मना करने के बावजूद, उनसे चुपके, खाना कूड़ेदान में फेंकने के लिए जाते थे। पकड़े जाने पर बहाने सौ थे। कभी यह कहकर कि खाने का मन नहीं कर रहा, तो कभी यह कहकर कि देर हो गई या फिर पसंदीदा खाना नहीं है, कहकर खिसक जाती थी। कॉलेज और स्कूल में भी, जब खाना फ़ेंकने जाते थे, तो पहले ही कूड़ेदान भरे होते थे। एक वक्त पर, कभी इस सोच पर फँस जाती थी कि अपना वाला मैं कहाँ पर डालूँ।

आजकल कि भागदौड़ भरी ज़िंदगी में लोग, भोजन का मूल्य जानकर भी अनजान बने रहते है। एक तरफ़ ये और दूसरी ओर इनके जैसे लाचार। अनजाने में ही सही, उस मुलाकात की वजह से डर भी लग रहा है और खुद के बरताव पर शर्मिंदगी भी। शायद आज के बाद खाने के प्रति मेरा रवैया बदल जाए। इनकी तुलना में देखा जाए, तो हम सब की किस्मत में रंग-बिरंगे भोजन हमें नसीब तो होते है। इस दिन का मुझे हमेशा याद रहेगा, क्योंकि आज के दिन ने, मुझे ऐसे लोगों की ज़िंदगी से रूबरू किया है जिसे मैं तो क्या, कोई भी कल्पना भी नहीं कर सकते।

एम केपी हाउस, कुरुपुष्रा, इलवट्टम पी ओ
तिरुवनंतपुरम - 695 562

कविता

फिर सृजन को

सुबोध श्रीवास्तव

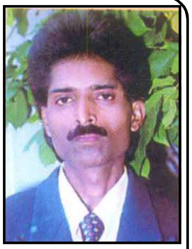

सब कुछ खत्म नहीं होता
सब कुछ
खत्म होने के बाद भी
बाकी रह जाता है
कहीं कुछ
फिर सृजन को!
हाँ, एक कतरा उम्मीद भी
खड़ी कर सकती है
हौंसले और विश्वास की
बुलंद इमारत
साँसों को ज़रूरत होती है तो
बस, एक ज़िंदा एहसास की।
यह सच ही है कि
तूफान में ढ़हे
घरौंदे
फिर उठ खड़े होते हैं
तिनका-तिनका जुड़कर
और/ उनकी मुंडेर पे
फिर चहचहाती है
चिड़िया
गीत गाती है
नई सुबह के...!

कानपुर
उ.प्र.-208 001

मैथिल कोकिल विद्यापति के काव्य में मिथिला लोकचित्रकला का निरूपण

डॉ गजेंद्र भारद्वाज

शोध सारांश- मैथिल कोकिल विद्यापति की पदावली के पदों में भक्तिऔर श्रृंगार दोनों की ही अभिव्यंजनाएँ सदा से शोध जिज्ञासुओं को आकर्षित और चमत्कृत करती आयी हैं। इसका मुख्य कारण उनकी चित्रात्मक अभिव्यक्ति है तो पाठकों के मानसपटल पर उनके शब्दों का जीवंत चित्र उपस्थित कर देती है। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा मैथिली के महान् कवि विद्यापति के अवहट्ट भाषा में लिखे भक्तिपदों के अंतर्गत राधा-कृष्ण, शिव-शक्ति और गंगा समेत अन्य देवी-देवताओं के स्तुतिपरक पदों की सर्जना की है वहीं ऐसे भी कई पद हैं जहाँ ये स्तुत्य देवी-देवता कुछ पदों में लौकिक-अलौकिक प्रेम के नायक-नायिकाओं के रूप में दिखाई देते हैं। कहा जा सकता है कि जिस प्रकार सूरदास ने वात्सल्य भाव के सूक्ष्मातिसूक्ष्म चित्र उपस्थित कर दिए, जयदेव ने श्रृंगार की परत-दर-परत खोलकर रख दी, उसी प्रकार विद्यापति ने राधा-कृष्ण युगल के दांपत्य प्रेम को उनके सभी आयामों के साथ प्रस्तुत करने में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है। विद्यापति ने इस युगल की समूची दैनंदिन गतिविधियों को उनकी सामाजिक पृष्ठभूमि और प्रकृतिपरक प्रेमाभिव्यंजित भावभंगिमाओं का ऐसा जीवंत चित्र उपस्थित कर दिया है कि वे हमारे मानसपटल पर प्रत्यक्ष हो जाते हैं। विद्यापति के काव्य के एक और विशेषता मिथिला की स्थानीय संस्कृति का निरूपण है। उनके पदों में प्रकृति के साथ स्थानीय लोक-संस्कृति उनके नायक-नायिकाओं की दैनंदिन गतिविधियों की सहचरी बनकर प्रस्तुत हुई है।

मिथिला का रहन-सहन, खान-पान, प्रकृति-संस्कृति, देवी-देवता, बात-विचार आदि मिथिला की लोकचित्रकला के भित्तिचित्रों, पटचित्रों तथा अरिपनों में भी निरंतर अभिव्यक्त होता रहा है। स्थानीय लोक-संस्कृति से प्रभावित मिथिला लोकचित्रकला तथा विद्यापति के पदों की चित्रात्मक-शैली एक-दूसरे के साथ साम्य रखती हैं। जिसके कारण यह परिलक्षित होता है कि विद्यापति के काव्य में मिथिला लोकचित्रकला का निरूपण मिलता है। परोक्ष कारण यह कि प्रत्येक साहित्यकार की वैचारिकी अपने समाज तथा संस्कृति से गहरे तक प्रभावित होती है जिसके कारण उसकी कल्पना में उस समाज के तत्त्वों का आलंबन उपस्थित रहता है। प्रत्यक्ष कारण यह कि विद्यापति के पदों में नायक-नायिकाओं की दैनंदिन गतिविधियों की चित्रात्मक अभिव्यक्तिमिथिला के स्थानीय समाज के वे चित्र उपस्थित कर देती है जो मिथिला लोकचित्रकलाओं में अभिव्यक्तहुए हैं। अस्तु प्रस्तुत शोधपत्र में मैथिल कोकिल विद्यापति के काव्य में मिथिला लोकचित्रकला के निरूपण का अध्ययन-विश्लेषण का प्रयास किया गया है।

प्रस्तावना- विद्यपति की पदावली में राधा-कृष्ण, शिव-शक्तितथा गंगा आदि देवी-देवताओं के भक्तिएवं श्रृंगार के ऐसे पद मिलते हैं जिनमें प्रकृतिपरक दैनंदिन प्रेमाभिव्यंजित भावभंगिमाएँ तथा स्थानीय सामाजिक-संस्कृति की अभिव्यक्ति हुई है। विद्यापति राधा की रूप माधुरी का नख-शिख वर्णन भी करते हैं तो नायक कृष्ण के हृदय में राधा के प्रति उदित प्रेमाभक्ति को भी इंगित करते हुए मानसपटल पर ऐसा जीवंत चित्र प्रस्तुत करते हैं मानो दोनों नायक-नायिकाएँ हमारे सामने ही हों। उनके द्वारा राधा-कृष्ण युगल को ही सुख-दुःख के साथ संयोग-वियोग या उल्लास-विरह के जीवंत चित्र बनाकर प्रस्तुत किया गया है। तो शिव-शक्ति की स्तुति भी प्रस्तुत की गई है। मिथिला लोकचित्रों की भित्तिचित्र शैली, अरिपन शैली तथा पटचित्र शैली तीनों में ही स्थानीय समाज व संस्कृति की दैनंदिन गतिविधियों की सौंदर्याभिव्यक्तिपरिलक्षित होती आयी है। मिथिला लोक-संस्कृति का भी प्रकृति के साथ अनिवार्य, अविच्छिन्न एवं घनिष्ट संबंध रहा है जो मिथिला लोकचित्रकला में उसके प्रारंभिक समय से ही दिखाई देता आया है। मिथिला पेंटिंग में बनाई जाने वाली कचनी, भरनी आदि शैलियों में विभिन्न प्रकार के पुष्प-लताएँ, पशु-पक्षी, स्त्री-पुरुष, देवी-देवता आदि को उकेरा जाता है। सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक आदि गतिविधियों के मिथिला लोकचित्रों में कभी त्योहार जैसे सामा-चकेवा, छठ, कोजागरी, कभी विवाह के विविध प्रसंग जैसे कोहबर, भाँवर, विदाई, कभी खेती के विभिन्न अवसर जैसे बौनी, निंदाई, गुड़ाई तो कभी शिव-शक्ति राम-सीता या राधा-कृष्ण को युगल रूप में दिखाया जाता रहा है।

यह अभिव्यक्तिमिथिला लोकचित्रों के साथ-साथ

अन्य लोककलाओं तथा लोक-संस्कृति के सभी रूपों में मिलती है, विशेषकर लोकगीतों में। विद्यापति की पदावली भी स्थानीय लोकगीतों से खासी प्रभावित रही है। आज भी कई लोकगीत ऐसे हैं जिन्हें गाने पर बरबस विद्यापति के कई पद स्मरण हो आते हैं, और कई पद ऐसे हैं जिनका पाठ या गायन करते समय कई स्थानीय लोकगीत याद आ जाते हैं। मैथिली लोकगीत, मिथिला लोकचित्रकला तथा मैथिल कोकिल विद्यापति की पदावली तीनों एक-दूसरे के साथ अन्योन्याश्रित तथा पूरकता का संबंध स्थापित करते हैं जिसके कारण यह अभिकल्पित किया जा सकता है कि ये तीनों एक ही तानेबाने से बुने हुए हैं। विद्यापति की पदावली में तथा मिथिला लोकचित्रों में जो साम्य भाव परिलक्षित होता है उसमें मिथिला लोक-संस्कृति जिन रूपों में अंकित हुई है उसके परिमाण का निर्धारण विद्यापति के पदों के अध्ययन एवं विश्लेषण से किया जा सकता है।

कुंजी-शब्द- भित्तिचित्र, अरिपन, रंग-संयोजन, रेखाचित्र, इंद्रधनुष।

विमर्श- मिथिला के लोकगीतों में विद्यापति के कई पद सोहर, कजरी, तिरहुत, जोग, महेशवानी, समदाउनी अनेक रूपों में व्याप्त हैं। कोमलकांत पदवली में लिखे विद्यापति के ये पद विश्वास दिलाते हैं कि ब्रजभाषा की कोमलकांत पदावली के बहुत पहले विद्यापति की भाषा में वह कोमलता थी जिसके सिंहासन पर मध्यकाल में ब्रजभाषा आसीन हुई। देस-बयना कही जाने वाली इस भाषा को विद्यापति ने अपनी रचनाओं में प्रयुक्त करते हुए सामान्य जन तक पहुँचाने का प्रयास किया। विद्यापति की रचना 'कीर्तिलता' के अंतर्साक्ष्य के रूप में स्वयं विद्यापति द्वारा निम्न पंक्तियों से यह प्रमाण मिल जाता है जहाँ वे अपनी भाषा को देस-भाषा 'अवहट्ठ' कहते हुए लिखते हैं- "सक्कय वाणी जा भावइ, पाउस रस्स को मम्म न पावइ।/देसिल बयणा सब जन मिट्ठा। तें तैसन जम्पओं अवहट्ठा।"[1]

विद्यापति के पद गेय होने के कारण मिथिला की लोक-संस्कृति में रच-बस गए था विभिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक आयोजनों, अवसरों, पर्वोत्सवों तथा त्योहारों पर सामूहिक रूप से गाए जाने लगे। शायद यही कारण है कि खुसरो, कबीर, तुलसी या सूरदास के कारण विद्यापति के पद भी आज तक संरक्षित हैं तथा समाज में विद्यापति को जीवंत बनाए हुए हैं। विद्वानों का मत है कि विद्यापति ने अपने आश्रयदाता राजा शिवसिंह तथा महारानी लखिमादेवी को ही क्रमशः कृष्ण तथा राधा के रूपक के रूप में प्रस्तुत करते हुए श्रृंगारिक चित्रण किया है। पदावली के प्रारंभिक पदों में विद्यापति द्वारा राधा तथा माता भैरवी की वंदना की जाती है। वे राधा को रंगीली राधा करते हुए उनके सौंदर्य के सामने कितनी ही लक्ष्मियों को बलिहारी जाने वाली कहते हैं। भैरवी की छवि की वंदना करते हुए विद्यापति लिखते हैं- "सामर बरन, नयन अनुरंजित, जलद-जोग फुल कोका।/कट कट विकट ओठ-पुट पाँड़रि, लिधुर-फेन उठ फोका।।"[2]

अर्थात् : हे पशुपति महादेव की अर्द्धांगिनी देवी माता भैरवी! आपका श्यामल शरीर और लाल-लाल नेत्र ऐसे प्रतीत होते हैं, मानो बादलों में रक्तकमल खिल रहे हों। आपके दोनों होठों से कट-कट का भयंकर शब्द हो रहा है। आपके ओष्ठ दैत्यों के रुधिर से पाँडर के लाल-लाल फूलों की भाँति रक्तिम हैं और उनसे रह-रहकर खून के बुलबुले उठ रहे हैं। इस पद में विद्यापति ने श्यामा माई की वंदना करते हुए उनका छविचित्र प्रस्तुत कर दिया है, जो स्थानीय मान्यताओं के अनुसार मिथिला लोकचित्रकला के माध्यम से भी प्रस्तुत किया जाता रहा है। विद्यापति ने चंद्रकांमणि, चूड़ा नामक आभूषण, लाल कमल के फूल, पाँडर नामक पुष्प, खड्ग आदि का चित्रोपम वर्णन किया है।

विद्यापति ने नायक-नायिका के आंगिक, अलंकार, भाव, रस, प्रेम, कामोद्दीपन तथा सौंदर्यादि तत्त्वों को आधार बनाकर चित्रात्मक शैली में प्रस्तुत किया है। वयःसंधि खंड में वे नायिका की केशराशि को कुटिल, मृदुल, नीलाभ आदि बताते हुए उनकी उपमा मेघ, शैवाल, नीलकमल, धूम्र आदि से देते हैं। विद्यापति के अनुसार नायिका के केशों की लंबाई उनकी कटि तक फैली हुई है। वे नखशिख खण्ड में नायिका के नेत्रों को कानों तक फैला बताते हैं(स्रवनक पथ दुहु लोचन लेल), उनके अनुसार नायिका के कुच स्थल पर यौवनागमन के कारण लालिमा छा गई है (उरज उदय-थल लालिम देल), यौवन के कारण नायिका की कमर गुरुता तथा नितंब को भार मिल गया है (कटिकेर गौरब पाओल नितंब)। इस प्रकार वयःसंधि के पदों में विद्यापति ने नायिका के शारीरिक सौंदर्य का शब्दचित्र उकेर कर रख दिया है। चित्रकार को किसी नायिका के चित्र के निर्माण के लिए नेत्र, मुख, उरज, कटि, गति आदि जिन रूपरेखाओं की आवश्यकता होती है वे सभी विद्यापति के पदों में विस्तृत विवरण, उदाहरण तथा रंगयोजना के साथ प्रस्तुत किए गए हैं। नायिका के मुख का रंग विद्यापति द्वारा अलग-अलग अवसरों पर उजला(सफेद),

पीतवर्णी(पीला), रक्तवर्णी(लाल), कमला(गुलाबी) बताया गया है। भौंह को भँवरे के समान (भौंह भ्रमर, नासापुट सुंदर), नाक को गरुड़ या सुआ के समान बताया है (नासा खगपति-चंचु भरम भयें), होंठ को बिंबफल, दंतपंक्तियों को तारा, दाड़िम या मणिरत्न की उपमा दी है(अधर बिंब सन, दसन दाड़िम-बिजु), उरोज को नारंगी फल, कलश, कमल(पहिलें बदरि कुच पनु नवरंग) की उपमा देते हुए विभिन्न कंट्रास रंग की योजना प्रस्तुत की है। विद्यापति ने नायिका के अंगों की सही छवि प्रस्तुत करने के लिए हरिण, चंद्रमा, कमल, कोकिला आदि उपमानों का प्रयोग भी किया है। एक उदाहरण दृष्टव्य है- "कि आरे! नव जौवन अभिरामा।/जत देखल तत कहए न पारिअ, छओ अनुपम एक ठामा।।/हरिन इंदु अरबिंद करिनि हिम, पिक बूझल अनुमानी।/नयन बदन परिमल गति तन रुचि, अओ अति सुललित बानी।।/कुच जुग उपर चिकुर फुजि परसल, ता अरु झाएल हारा।/जनि सुमेरु उपर मिली उगल, चाँद बिहुनि सबे तारा।।/लोल कपोल ललित मनि-कुंडल, अधर बिंब अध जाई।/भौंह भमर, नासापुट सुंदर, से देखि कीर लजाई।।/भनइ विद्यापति से बर नागरि, आन न पाबए कोई।/कंसदलन नाराएन सुंदर तसु रंगिनि पए होई।।"[3]

सद्यःस्नाता खंड में विद्यापति ने स्नान करती हुए नायिका का अंतरंग वर्णन करते हुए उसके कांतिमय चेहरे, कटिस्थल, नाभि आदि अंग-प्रत्यंगों का विस्तृत वर्णन किया है। स्नान के निमित्त भीगी नायिका के दर्शन जब नायक को होते हैं तो वह उसकी अंजनरहित नेत्रों की लालिमा की उपमा देते हुए कहता है कि ऐसा प्रतीत होता है मानो कमल के पत्तों को सिंदुर से रंजित कर दिया गया है(नीर निरंजन लोचन राता, सिंदुर मंडित जन पंकज-पाता, पद संख्या-25)

नायिका के सौंदर्य में वृद्धिककरक तत्त्वों में विद्यापति ने वस्त्राभूषणों तथा मान्यानुलेपन का प्रयोग किया है। राधा के सौंदर्य का वर्णन करने के लिए उन्होंने वस्त्रों के रूप में चुनरी, चोली, अँगिया, घाघरा, लहँगा, साड़ी आदि वस्त्रों का उल्लेख करते हैं। जब नायक कृष्ण नायिका राधा के साथ प्रेम में छेड़छाड़ करते हैं तो राधा के वस्त्र फट जाते हैं जिससे राधा को लाज के मारे संकोच होता है। (छाड़ कान्ह मोर आँचर रे, फाटत नव-सारी)। यहाँ राधा के वस्त्रों के रूप में आँचल अर्थात् चुनरी तथा साड़ी का उल्लेख मिलता है। राधा कृष्ण से लजाते हुए कभी घूँघट कर लेती है तथा उसकी ओट से अपने प्रियतम को देखती है। विद्यापति ने विभिन्न आभूषणों के माध्यम से राधा के रूप सौंदर्य का चित्रण किया है। माँग का टीका, कान के कर्णफूल, नाक की नथनी, गले का चंद्रहार, हाथों की चूड़ी, अगुली की अँगूठी, कटि का कटिबंध, पैर की पाजेब आदि नायिका राधा के रूप सौंदर्य में अनुपम वृद्धि कर देते हैं। विद्यापति प्रेम-प्रसंग खंड में कामदेव राधा के सौंदर्य से शंकाकुल होकर उन्हे शिव समझ लेता है तक राधा उनके भ्रम को दूर करते हुए कहती हैं- "कतन बेदन मोहि देसि मदना। हर नहि बाला मएँ जुबति जना।।/बिभूति-भूषन नहि चाननक रेनू। बघछाल नहि सिर नेतक बसनू।।/नहि मोरा जटाभार चिकुरक बेनी। सुरसरि नहि सिर कुसुमक स्रेनी।।/चाननक बिन्दु मोरा नहि इंदु छोटा। ललाट पाबक नहिं सिंदुरक फोटा।।/नहि मोरा कालकूट मृगमद चारु। फनिपति नहि मोरा मुकुता-हारु।।/भनइ विद्यापति सुन देब कामा। एक पए दूखन नाम मोर बामा।।"[4]

विद्यपति कहते हैं कि राधा के रूप सौंदर्य से कामदेव भी लज्जित होकर सशंकित हो गए हैं जिनके भ्रम को दूर करते हुए राधा अपने बारे में बताते हुए कहती हैं कि हे कामदेव! मैं विभूति, बाघचर्म, जटाजूट, गंगा, चंद्रमा, अग्नि, कालकूट, सर्प आदि धारण करनेवाले शिव नहीं बल्कि एक स्त्री हूँ जिसका शिव से केवल वामा नाम मात्र का साम्य है। मेरे शरीर पर चंदन के लेप की सुगंध है। मैंने नवीन वस्त्र पहना हुआ है। बालों में वेणी की सुवास और पुष्पमाल है। ललाट पर चँद्रबिंदु का तिलक है और गले में मोतियों की माला है। इस पद के माध्यम से विद्यापति ने राधा के वस्त्राभूषणों तथा माल्यालेपन जनित सौंदर्य की एकमुश्त व्याख्या कर दी है। चंदन, केसर, कस्तूरी, सिंदूर, गुलाब-जल, महावर, काजल, आदि लेपन को भी विद्यापति ने नायिका के सौंदर्य में वृद्धि का कारण बताया है। माँग का सिंदूर, आँखों के काजल या अंजन, ओष्ठ की लालिमा, हाथों की मेंहदी, पैर के महावर आदि का नायिका के सौंदर्य वर्णन में मिलता है। विद्यापति लिखते हैं- "प्रथमहि अलक तिलक लेब साजि। चंचल लोचन काजरें आँजि।/जाएब बसन आँग सब गोए। दूरहि रहब तें अरघित होए।"[5]

विद्यापति कहते हैं कि जब नायिका राधा कृष्ण के विलासगृह में प्रवेश करने वाली होती हैं तब राधा की सखियाँ उसे कामशिक्षा देते हुए कहती हैं कि है राधा! पहले तो अपने केश और बिंदी को सजा लेना फिर अपने चंचल नेत्रों में काजल आँज लेना और जाते समय शरीर के अंगों को वस्त्रों से भतिभाँति आच्छादित कर लेना। रामवृक्ष

बेनीपुरी द्वारा संपादित विद्यापति पदावली के वसंत खण्ड में विद्यापति लिखते हैं- लता तरु अर मंडप दीअ। निरमल ससधर भिति धबलीअ।।/पउअँ नाल अइपन भल भेल। रात पल्लव नव पहिरन देल।।/केसु कुसुम करु सिंदुर दान। जौतुक पाओल मानिनि मान।।"[6]

वसन्त आते ही वृक्ष नये कोंपल लाल रंग के पत्तों से भर जाते हैं। नायिका राधा सोचती है कि कि इन लताओं से आच्छादित ये तरु वर किसलयों के परिधान में कृष्ण के ध्वज रूपी मंडप ही हैं जिन्हें कृष्ण के प्रेम की विजय पताका के रूप में चन्द्रमा की धवल चाँदनी द्वारा नायिका के घर की भित्तियों को चूने के रंग से रंगकर मानो स्वच्छ कर दिया गया है। मिथिला लोकचित्रकला में भित्तिचित्र बनाते समय दीवार की पृष्ठभूमि को चूने के धवल रंग से रंग दिया जाता है। विद्यापति के पद की ये पंक्तिय़ाँ मिथिला लोकचित्रकला की इसी शैली के साथ साम्य प्रस्तुत करती हैं। इस पद में आगे नायिका कमल की सुंदर पंखुड़ियों और नाल वाला सुंदर अरिपन(अइपन) करती है। यह अरिपन भी जमीन पर चावल के आटे से बनाई जाने वाली मिथिला लोकचित्रकला की एक शैली है। इसे देखकर ऐसा लगता है मानो नवपल्लव ने रात्रि को नया परिधान दे दिया है। नायिका इस धवल चाँदनी रात में ऋतुराज वसंत के विवाह की कल्पना अपनी सखी से करती है। वह अपनी सखी को बताती है कि इस विवाह की सजावट में चंपा और केला वंदनवार के रूप में लगाये गए हैं। बिखरे हुए बेला के फूल धान के लाबा अर्थात् खील के रूप में छींटे गए हैं। पलाश के फूल ने सिंदूर का दान दिया है इस प्रकार वसंत रूपी दूल्हे ने दहेज के रूप में मानिनी दुल्हन का मान पाया है।

विद्यापति ने संयोग और वियोग के विभिन्न भावानुभावों द्वारा नायक-नायिका के भावचित्र को प्रस्तुत किया है। इसके लिए उन्होंने सात्विक, मानसिक, आंगिक या कायिक तथा वाचिक अनुभावों को अंग विकार अंतःकरण के प्रमोद, कटाक्षादि चेष्टाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त स्नानादि के समय एक-दूसरे को देख लेने से उत्पन्न अनुरक्तिके कारण दर्पणादि में प्रतिबिंब देखते हुए पूर्वानुराग, संग के पहले मान-मनौअल, मिलन प्रसंग, वियोग आदि की भावाभिव्यक्तिउन्होंने चित्रकला के अनुकूल नायिकाभेद के विभिन्न उदाहरणों के माध्यमों से की है। विद्यापति की विरहासक्तनायिका कहती है कि वसन्त काल में जब श्रीहरि पुनः वापस लौटेंगे तब वह 'अलिपन' की लिखिया करेगी। यहाँ 'अलिपन' वास्तव में मिथिला लोकचित्रकला की एक शैली 'अरिपन' ही है जो चावल के आटे के घोल से तैयार की जाती है। 'लिखिया' मिथिला लोकचित्रकला के निरूपण की एक पद्धति है। "लिखिया मुख्यतया चार प्रकार से किया जाता है उँगली की नोक से चावल के स्वेत रंग से भूमि पर अरिपन लिखिया, कागज वस्त्र या किसी दूसरी वस्तु पर कलम या किसी भिन्न साधन से लिखिया और उँगली से गोबर या मिट्टी की लिखिया।"[7]

चित्रकला में कोमल भावों को हल्की रेखाओं, दृढ़ भावों को गहरी रेखाओं, सादगी को सीधी खड़ी रेखाओं, कुटिलता तथा रहस्य को वक्र रेखाओं, उत्थान को उर्ध्वगामी रेखाओं, पतन या अवनति या उदासी को अधोगामी रेखाओं, भय या क्रोध को तिरछी रेखाओं आदि के द्वारा दर्शाया जाता है। विद्यापति ने इन रेखाचित्रों को नायक-नायिका के हावभाव एवं चेष्टाओं द्वारा प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। उदाहरण प्रस्तुत है- "ए सखि पेखलि एक अपरूप। सुनइत मानब सपन-सरूप।।/कमल जुगल पर चाँदक माला। तापर उपजल तरुन तमाला।।/तापर बेढ़लि बीजुरि-लता। कालिंदी तट धिरें-धिरें जाता।।/साखा-सिखर सुधाकर पाँति। ताहि नब पल्लब अरु निम काँति।।/बिमल बिंबफल जुगल विकास। तापर कीर थीर करु बास।।/तापर चंचल खंजन-मोर। तापर साँपिनि झाँपल मोर।।/ए सखि रंगिनि कहल निसान। हेरइत पुनि मोर हरल गेआन।।/कवि विद्यापति एह रस भान। सुपुरुख मरम तोहें भल जान।।"[8]

विद्यापति के इस इस पद में राधा द्वारा अपनी सखी के समक्ष कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन किया गया है। राधा अपनी सखी से कहती है कि हे सखी! एक अपूर्व स्वप्न में मैंने कृष्ण के दो चरण कमलों के सुंदर नखपंक्तिय़ों को देखा। इन पंक्तिय़ों पर तरुण तमाल वृक्ष के समान उनका युवा श्यामल शरीर मुझे दिखाई दिया। उनके पीतांबर वस्त मानो उनके शरीर पर विद्युतरूपी लता के समान लिपटी थी। वे कृष्ण धीमे कदमों से यमुना के तट की ओर जा रहे थे। उनके हाथ की अँगुलियों में नखपंक्तिचन्द्रमा के समान दीख पड़ती थी। जिसपर अरुणकमल के नवपल्लव जैसी शोभा से युक्तकरतल दिखाई दे रहा था। इसके उपर स्वच्छ दो बिम्बफल(ओष्ठ) थे, जिनके उपर तोता के समान नाक स्थिर थी। अर्थात् उनकी नाक तोते की चोंच के समान पतली थी। नाक के उपर दो चचलता की प्रतिमूर्ति खंजन पक्षी जैसी दो आँखें थीं। इन आँखो को नागिन समान केशराशि ने हिल-डुलकर ढँक रखा था। हे रंगिनि सखि! कृष्ण के ये सब लक्षण मैंने तुम्हें कह सुनाए।

ऐसे सुन्दर नायक को देखते ही मेरा सारा ज्ञान लुप्त प्रायः हो गया।

एक अन्य पद में नायिका के सौंदर्य का भावचित्र प्रस्तुत किया गया है- "जाइत पेखलि नहाएति गोरी, कत सएँ रूप धनि आनल चोरी।/केस निगारइत बह जल-धारा, चमर गरए जनि मोतिम-हारा।।/तीतल अलक बदन अति शोभा, अलिकुल कमल बेढ़ल मधुलोभा।।/नीर निरंजन लोचन राता, सिंदुर मंडित जनि पंकज-पाता।।/सजल चीर रह पयोधर-सीमा, कनक-बेल जनि पड़ि गेल हीमा।।/तूल कि करइते चाहे के देहा, अबहि छोड़ब मोहि तेजब नेहा।।/ऐसन रस नहि पाओब आरा, इथे लागि रोइ गरए जल धारा।।/विद्यापति कह सुनह मुरारि, वसन लागल भाव रूप निहारि।।"[9]

इस पद में विद्यापति लिखते हैं कि हे कृष्ण! मैंने स्नानोपरांत रमणी नायिका के अनुपम रूप सौंदर्य का दर्शन किया। जब वह भीगी हुई केशराशि को कसती है तो गिरने वाली जलधारा ऐसी प्रतीत होती है मानो चँवर से मोतियों का हार टूट कर गिर रहा हो। उसकी सुंदरता द्विगुणित हो जाती है मानो कमल के मकरंद को वशीभूत भ्रमरों के समूह द्वारा चारों ओर से घेर लिया गया हो। स्नान के दौरान पानी से भीगे नेत्र अंजनरहि होकर लाल हो गई हैं मानो कमल पर्ण को सिंदूर से रंग दिया गया हो। कुचों पर भीगा वस्त स्वर्णलता पर तुषार की भाँति चिपक गया हो मानो उससे मनुहार कर रहा हो कि कहीं वह उसे सूखे वस्त्र से बदलकर उसे अलग न कर दे। इस आशंका के भय से उस वस्त्र की अश्रुधारा ने मानों उसे भिगो दिया है। इस पद में नायिका का शरीर गौरवर्ण या पीतवर्ण का है, जिसके कारण उसके गोरे शरीर पर श्वेत झीनी साड़ी बहुत सुंदर लग रही है। विद्यापति कहते हैं कि ऐसा लगता है मानो जल समान चादर उपस्थित हो गया है। इस पद में नायिका का शरीर स्वर्णिम रंग की तरह तथा श्वेत साड़ी उसके झिलमिल आभा दर्पण के समान परिलक्षित हो रही है। यह समरूप रंग संयोजन है। जिसमें चित्र की पृष्ठभूमि गहरे रंगों की होती है। पदावली के 'मान' खंड में का एक पद प्रस्तुत है जिसमें नायक परस्त्री के साथ रात्रि व्यतीत करके आया है। नायक यह बात नायिका से छिपाने के लाख प्रयत्न करता है पर नायिका उसके इस कृत्य को जान ही लेती है। विद्यापति लिखते हैं- "कुंकुमे लओलह नख-खत गोइ। अधरक कालर अएलह धोइ।।/तइओ न छपल कपट-बुधि तोरि। लोचन अरुन बेकत भेल चोरि।।/चल चल कान्ह बोलह जनु आन। परखत चाहि अधिक अनुमान।।/जानओं प्रकृति बुझओं गुनशीला। जत तोर मनोरथ मनसिज-लीला।।/बचन नुकाबह बेकतओ काज। तीहें हँसि हेरह मोहि बड़ लाज।।/अपथहु सपथ बुझाबह राधे। कोन परि खेमओं सठ अपराधे।।/भनइ विद्यापति पिअ अपराध। उदघट न कर मनोरथ साध।।"[10]

इस पद में रंगो की समरूपता के कारण नायिका नायक के मनोभावों को तुरंत ताड़ लेती है, कि सौतन में नायक के नेत्रों में चुंबन से स्पर्श किया होगा जिसके कारण उसकी पलकों पर कुंकुम है। यह भी हो सकता है कि उसने इन्हें रातभर सोने न दिया हो जिसके कारण उनकी आँखें लाल हो गई हैं। स्वयं नायक ने रति के दौरान सौतन के नेत्रों पर चुंबन किया होगा जिसके कारण उसके होठों पर काजल लगा गया है। रति के दौरान ही नायक ने सौतन के पैरों पर अपना माथा टिकाया होगा जिसके कारण उसके माथे पर महाबर का गुलाबी रंग अंकित हो गया है। इस प्रकार नायक के बिना कुछ कहे ही नायिका पूरी स्थिति को भाँप लेती है तथा कहती है कि सौतन द्वारा तुम्हारा वक्षस्थल क्षत-विक्षत किया गया होगा जिसको छिपाने के लिए तुमने उस पर कुंकुम लगा लिया है। उनके नेत्रों का अंजन तो तुम्हारे होठों पर लगा था उसे तुमने धोने का प्रयास किया है। तुम्हारी लाल आँखें साक्ष्य दे रही हैं कि तुम किसी सौतन के साथ रात बिताकर आए हो। हे कृष्ण! अब मुझसे दूर रहो, निकट आने का प्रयास मत करो। तुम्हारी चोरी पकड़ी जा चुकी है इसलिए व्यर्थ बचने का कोई साधन मत ढूँढो। इस प्रकार इस पद में लाल, काला और गुलाबी रंग के माध्यम से नायिका अनुमान लगा लेती है कि नायक सौतन के साथ संसर्ग करके आया है। यह रंग संयोजन विद्यापति के रंगों के प्रति गहरे ज्ञान का परिचायक है। इसी प्रकार "देख देख राधा रूप अपार। अपरूप के बिहि आन मेराओल, खिति-तिल लावनि सार"[11], "चाँद सार लय मुख घटना, करू, लोचन चकित चकोरे"[12], "ससन-परस खसु अंबर रे, देखल धनि देह"[13], "गगन अब धन मेह दारु न, सघन दामिनी झलकई"[14] आदि में भी रक्तिम, स्वर्णिमत, दाड़िम तथा कालिमा आदि समरूप-विरोधी, प्राथमिक, सहायक, मध्यवर्ती तथा उदासीन रंगों तथा वर्णों का विधान विद्यापति द्वारा किया गया परिलक्षित होता है।

उपसंहार- कवि और चित्रकार दोनों एक ही धर्म के अनुयायी हैं। इस कथन की सत्यता की प्रतिमूर्ति मैथिल कोकिल विद्यापति को माना जा सकता है। चित्रकार जहाँ अपनी भौतिक तूलिका का उपयोग करते हुए प्रत्यक्ष चित्र

का निर्माण करता हैं वहीं कवि शब्द-तूलिका का प्रयोग करते हुए मानसपटल पर आभासी चित्र उकेरता है। चित्रकार का चित्र शारीरिक नेत्रों से परिलक्षित होता है तो कवि का आभासी चित्र मानसिक चक्षुओं से देखा जा सकता है। चित्रकार अपने चित्र के बिंब कविता के भावों से खोजता है तो कवि चित्र का प्रतिबिंब कविता प्रस्तुत करते हुए उसे मूर्त रूप देता है। इस बिंब-प्रतिबिंब का प्रत्यक्ष रूप विद्यापति की पदावली में एकसाथ ही दिखाई देता है। विद्यापति की पदावली के कई पद ऐसे मिल जाते हैं जिनकी चित्रात्मक शैली मिथिला लोकचित्रकला के साथ सहधर्मी बनकर उपस्थित होती है। उन्होंने नायक-नायिका की शारीरिक-मानसिक दशा-मनोदशा, हाव-भाव का चित्रात्मक वर्णन किया है। विद्यापति के लिए नायिका राधा सौंदर्य की प्रतिमूर्ति है तो नायक कृष्ण भी सुंदरता के सागर हैं। कवि ने इन नायक-नायिकाओं के रूप सौंदर्य का वर्णन करते हुए नख-शिख वर्णन के माध्यम से अंग-प्रत्यंग और वेशभूषा का वर्णन करते हुए चित्रात्मक रंगविधान का प्रयोग किया है।

विद्यापति युगल छवि के सौंदर्यवर्णन में राधा की केशराशि से लेकर भृकुटि, नेत्र, मुख, अधर, दंतपंक्ति नाभि, कटि, कंचुकि, आभूषण आदि को तो कृष्ण के मोरमुकुट, बाँसुरी, पीतांबर, तुलसी गलमाला को विश्लेषित करते हुए अपभ्रंश की शब्दावली में अनुलेपन, पटचित्र आदि का आश्रय लेते हैं, जो मिथिला लोकचित्रकला की शैलियाँ हैं। मिथिला पेंटिंग की इन शैलियों में कई लोकचित्र ऐसे मिलते हैं जिनके रंगविधान विद्यापति के पदों में अभिव्यक्त भावव्यंजना का पूरक बनकर उपस्थित होता है। माधव, तोहे जनु जाह विदेश, कुंज-भवन सएँ निकसल रे, रोकल गिरिधारी, नन्दक नन्दन कदम्बेरि तरू-तर, हरि-कर हरिनि-नयनि धनि सोपल, माधव तोहें जनु जाह बिदेस, पिआ मोर बालक हम तरूणी' आदि ऐसे पद हैं जिनमें विद्यापति ने नायक-नायिकाओं की चेष्टाओं एवं भावभंगिमाओं के अनुसार चित्रों में प्रयुक्तप्राथमिक, सहायक, मध्यवर्ती तथा उदासीन रंगों के सामानांतर, कंट्रास तथा मिश्रित रंगों के संयोजन-वियोजन से चमत्कारपूर्ण विवरण तक प्रस्तुत किया है। नायिका के गले में पान का लाल रस, नायिका की नीली चुनरी, चुनरी में रक्तवर्णी लाल अधर आदि विद्यापति के रंगसंयोजन को प्रत्यक्ष कर देते हैं। कहा जा सकता है कि विद्यापति के पदों में रेखाचित्रकला के सभी तत्त्वों का समावेश किया गया है। अस्तु विद्यापति के काव्य में मिथिला लोकचित्रकला का बहुविध निरूपण हुआ है।

संदर्भ-

1. कीर्तिलता, छंद-1/13, संपादक-वासुदेवशरण अग्रवाल, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, 1962, पृ.-15
2. बेनीपुरी, रामवृक्ष, विद्यापति पदावली, पद संख्या-3, साहित्य सरोवर, आगरा, 2018, पृ.-3
3. बेनीपुरी, रामवृक्ष, विद्यापति पदावली, पद संख्या-11, साहित्य सरोवर, आगरा, 2018, पृ.-10
4. बेनीपुरी, रामवृक्ष, विद्यापति पदावली, पद संख्या-42 साहित्य सरोवर, आगरा, 2018, पृ.-43
5. बेनीपुरी, रामवृक्ष, विद्यापति पदावली, पद संख्या-62 साहित्य सरोवर, आगरा, 2018, पृ.-62
6. बेनीपुरी, रामवृक्ष, विद्यापति पदावली, पद संख्या-177 साहित्य सरोवर, आगरा, 2018, पृ.-176
7. कश्यप कृष्ण कुमार एवं शशिबाला, मिथिलाः लोक कला ओ लोक संस्कृति, कर्णामृत(पत्रिका), (अंकः जुलाई से सितंबर), 2006, विशेषांक, संपादक- राजनन्दन लाल दास, निवेदिता सरणी, कोलकाता, पृ.-06
8. बेनीपुरी, रामवृक्ष, विद्यापति पदावली, पद संख्या-36 साहित्य सरोवर, आगरा, 2018, पृ.-37
9. बेनीपुरी, रामवृक्ष, विद्यापति पदावली, पद संख्या-25 साहित्य सरोवर, आगरा, 2018, पृ.-25
10. बेनीपुरी, रामवृक्ष, विद्यापति पदावली, पद संख्या-134 साहित्य सरोवर, आगरा, 2018, पृ.-131
11. बेनीपुरी, रामवृक्ष, विद्यापति पदावली, पद संख्या-2, साहित्य सरोवर, आगरा, 2018, पृ.-2
12. बेनीपुरी, रामवृक्ष, विद्यापति पदावली, पद संख्या-14, साहित्य सरोवर, आगरा, 2018, पृ.-13-14
13. बेनीपुरी, रामवृक्ष, विद्यापति पदावली, पद संख्या-29, साहित्य सरोवर, आगरा, 2018, पृ.-28
14. बेनीपुरी, रामवृक्ष, विद्यापति पदावली, पद संख्या-112, साहित्य सरोवर, आगरा, 2018, पृ.-108-109

सहायक प्राचार्य हिंदी,
मारवाड़ी महाविद्यालय,
दरभंगा, बिहार

सुधा अरोडा की कहानी 'तीसरी बेटी के नाम ये ठण्डे, सूखे, बेजान शब्द' में नारी संघर्ष

ग्रीष्मा मोहन

शोध सार : समकालीन साहित्य का नयापन इसकी विविधता है । एक ही विचार को विभिन्न लेखक अलग - अलग दृष्टि से देखते हैं । पुरानी विचारधाराओं से संबंधित उनके दृष्टिकोण भी विभिन्न है । इसलिए वे पुरानी साहित्य रचनाओं या समस्याओं को नए सिरे से व्याख्या करने की कोशिश करते हैं । स्त्री एवं स्त्री से जुड़ी हुई समस्याओं का अंकन पिछले कई सदियों से हो रहे हैं, लेकिन प्रत्येक लेखक का इस बात से संबंधित दृष्टि भिन्न है। समकालीन महिला कहानीकारों में मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा और कृष्णा सोबती के बाद सुधा अरोड़ा का महत्वपूर्ण स्थान है। वे एक साहित्यकार होने के साथ - साथ कार्यकर्ता भी है, इसलिए स्त्री समस्याओं से संबंधित उनकी दृष्टि पैनी एवं सूक्ष्म है। उनकी कहानी मध्यवर्गीय भारतीय परिवार का असलियत पेश करनेवाली है।

मूल शब्दः सुधा अरोड़ा, नारी संघर्ष

प्रस्तावनाः एक कहानी की रचना प्रक्रिया के बारे में सुधा अरोड़ा का मंतव्य है "मेरे लिए कहानी लिखने का अर्थ जीवन में आए किसी विशिष्ट पात्र या किसी हैरतगंज घटना का बयान करना नहीं है। यों तो रोज ही हमारे इर्द - गिर्द और हमारे घर से बाहर भी इतना कुछ घटित होता है कि हर रोज कुछ कहानी बन सकती है। पर कोई भी घटना या पात्र तब तक कहानी का विषय नहीं बनता जब तक वह समाज की किसी बड़ी विसंगति या किसी बड़े सरोकार का प्रतिनिधित्व नहीं करता।"[1] सुधा अरोड़ा के लेखन में निरंतर ताज़गी दिखाई देती है। वे स्त्री जीवन अनछुए पहलुओं को अपनी कहानियों के विषय के रूप में चुनती है। "देह विमर्श की तीखी आवाज़ों के बीच सुधा की कहानी स्त्री जीवन के किसी अनछुए कोमल पक्ष को अभिव्यक्तकरती कर्णप्रिय लोकगीत सी लगती है। इनका उद्देश्य घरेलू हिंसा और पुरुष की व्यवहारिक व मानसिक क्रूरता के आघात झेलकर ठूँठ हो चुकी स्त्री मन में फिर से हरीतिमा अँखुआने और जीवन की कोमलता उभारने की संवेदना का सिंचन करना है।"[2] महिला कार्यकर्ता होने के कारण सुधा अरोड़ा भारतीय नारी के यथार्थ से परिचित है इसलिए उनकी कहानियाँ मनोरंजन की नहीं बल्कि वास्तविकता या असलियत की कसौटी पर खड़ा उतरते हैं। सुधा जी का ही शब्दों में "मैं दुपहर की फुर्सत में नींद दिलाने के लिए कहानियां नहीं लिखती। कहानी पढ़कर आती हुई नींद भाग जाए और पढ़ने वाले के दिमाग में थोड़ा-सा खलल पैदा करे, कुछ सोचने पर मजबूर करे, घर के पिछ्वाड़े फेंक दी गई या जानबूझकर आंखों से ओझल कर दी गई कुछ अनचाही स्थितियों को सामने ला खड़ा करे, तभी कहानी लिखने का मकसद पूरा होता हुआ दिखाई देता है।"[3]

तीसरी बेटी के नाम ये ठण्डे,सूखे, 'बेजान शब्द' कहानी की नायिका सुनयना है। जो 28 वर्ष की आयु के पार करने के पहले अपने पति द्वारा मारा गया। सुधा जी सुनयना की जीवन गाथा उनकी माँ की यादों के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत करती हैं। सुनयना की माँ की जिंदगी में वे वसंत ऋतु की तरह आती है। छोटी उम्र में सुनयना को एक बस कंडक्टर और एक साधु से शारीरिक अतिक्रमण सहनी पड़ी। तब उनकी माँ उन्हें स्त्री होने की शिक्षा देती है। धीरे - धीरे सुनयना समझदार हो जाती है और कक्षा में अव्वल आने लगी। उनके कमरा मेडल और ट्रॉफियों से भर गयी । पढ़ते वक्त सुनयना एक लड़के से प्यार करने लगी लेकिन लड़का दूसरे मज़हब में होने के कारण रिश्तेदारों ने इसका विरोध किया और सुनयना को वह रिश्ता छोड़ देनी पड़ी। अपने भीतर लहूलुहान होने पर भी समझदार सुनयना अपने पैरों में खड़े होकर बड़ी - बड़ी डिग्रियाँ हासिल की। फिर सुनैना की शादी एक लड़के से हुआ। उसने सुनयना को सीढी बनाकर उपर उपर उठता गया। सुनयना को वह तालों में बंद कर दिया। जब सुनयना उस तहखाने से निकलने का रास्ता ढूँढने लगी तब पति ने बाहर की दुनिया से उसके सारे सरोकारों को रद्द करके

उसे पर पहरा बिठा दिया। सुनयना पंख खोलकर आसमान को छूने की कोशिश करते वक्त पति ने उसको चिथडा काटकर भट्ठी की जलती आग में झोंक दिया। अखबारों में सुनयना की मौत के कारण 'हर ऐम्बिशन्स लेड टु हर डेथ' वाक्य में खत्म कर दिया। अंत में माँ कहती है कि तेरी चिता पर रखने के लिए इन ठंडे, सूखे बेजान शब्दों के सिवा कुछ भी मेरे पास नहीं है। और सुनयना को एक ऐसे निर्देश देती है कि जब तक उसके हिस्से का आसमान, उसके और सिर्फ उसके नाम ना कर दिया जाए तब तक उसको औरत बनना है।

'तीसरी बेटी के नाम ये ठण्डे, सूखे, बेजान शब्द' में नारी संघर्ष : 'तीसरी बेटी के नाम - ये ठंडे, सूखे बेजान शब्द' कहानी का विषय से हम अपरिचित नहीं है। क्योंकि पुरुष प्रधान समाज से प्रार्थना सहने वाली नई भारतीय पाठकों के लिए परिचित है। कहानी के मुख्य पात्र सुनाइए ना अभी इसी तरह के एक स्त्री है जो जन्म से लेकर मृत्यु तक तिरस्कार का भाव सहती है लेकिन वह हारने के लिए तैयार नहीं है। अपने परिस्थितियों के साथ वह हमेशा संघर्ष करती रहती है।

भारत जैसे विशाल देश में बच्ची को पैदा करना एक पाप है। बच्ची को पैदा करने वाले माँ को भारतीय समाज घृणा की दृष्टि से देखते हैं। इसलिए सुनयना की माँ से बूढी बुआ ऐसे पूछ्ती है- "हाय मेरे रब्बा ! इक होर कुड़ी ? बनाण वाले दे घर मिट्टी थुड गई सी ? (एक और लड़की ? तुझे बनाते समय मिट्टी कम पड़ गई थी ?"[4] लेकिन इसके लिए सुनयना की माँ का उत्तर सकारात्मक है-"बुआ ऐसे मत बोल !यह मेरी बेटी भी है और बेटा भी ! बेटा होता तो भी इतनी ही तकलीफ देकर, इतना ही खून बहा कर पैदा होता !"[5] बहुत ही कम भारतीय स्त्रियों में सुनैना की माँ की हिम्मत हमें देख सकते हैं। धीरे - धीरे सुनयना जब बढ़ती है तब माँ को उन्हें एक स्त्री होने की शिक्षा देनी पड़ती है। माँ को जानकारी है कि इस समाज में अपने प्रति होने वाले अत्याचारों या शोषणों के प्रति लड़की को खुद लड़ना है और उसमें ताकत इकट्ठा करना माँ का उत्तरदायित्व है।

आधुनिक नारी की सबसे बड़ी विशेषता उसकी आर्थिक स्वावलंबन और आत्मनिर्भरता है। वे अपने पैरों में खड़ा करना चाहती है। उनके राय में आर्थिक स्वावलंबन आजादी का पहला पड़ाव है। सुनयना के पति जैसे पुरुष स्त्री की बुद्धि और क्षमता को सीढी के समान इस्तेमाल करके जीवन में आगे बढ़ते है। वे महिलाओं का शोषण केवल दैहिक रूप से नहीं बल्कि आर्थिक, मानसिक और बौद्धिक रूप में भी करते हैं। जब उनकी पत्नी आसमान को छूने के लिए अपना पंख फैलाती है तब वह उन पंखों को काट देते हैं और उन्हें रसोई घर के चार दीवारों में बंद कर देते हैं। अगर लड़की ज्यादा विचारशील है तो उन्हें शरीर को चिथडा करके जलती आग में फैक देने की सज़ा भोगनी पड़ती है । सुनैना को मिली हुई है सजा चौकाने वाली नहीं है। क्योंकि अब हम जब अखबार खोलते हैं तब अखबार में हमेशा ऐसी खबर छ्पकर दिखाई पड़ते हैं। मीडिया इस तरह की मृत्यु को कुछ दिन के लिए उत्सव बना देते हैं लेकिन अंत में उनकी मृत्यु केवल 'हर एंबिशियन्स लेड टु हर डेथ' वाक्य में समाप्त कर देते है।

सुधा जी नयना साह्नी के तंदूर कांड और अंजू सिंह के तथा कथित आत्महत्या का जिक्र करके यह कहानी लिखी है । इन दोनों हत्याओं में मीडिया ने बहुत अधिक हस्तक्षेप किया है। हत्या को आत्महत्या में बदलना उनके लिए आसान बात है । सुधा जी के शब्दों में - "लड़की के चरित्र को कटघरे में खड़ा कर उसे पर लांछ्न लगाना सबसे आसान काम है। मीडिया इसमें पूरा सहयोग देता है क्योंकि मीडिया को सनसनीखेज बिकाउ खबर चाहिए और लड़की के शीलभंग, बलात्कार, चरित्र से ज्यादा बिकाउ भला किया होगा ?"[6]

एक मध्यवर्गीय परिवार में रहकर अपनी बेटी के मान सम्मान के लिए लड़ने वाले असहाय माँ के जरिए सुधा जी एक कहानी हमारे सामने पेश करते हैं। अंतिम भाग में आते - आते माँ की असहायता ताकत के रूप में परिणत हो जाते हैं। "तुझे तो फिर फिर वही बना है ! फिर फिर औरत ! सौ जन्मों तक औरत ! तब तक औरत जब तक तेरे हिस्से का आसमान, तेरे और सिर्फ तेरे नाम न कर दिया जाए !"[7] यह वाक्य वास्तव में एक संदेश है जो सुधा जी हमारे देश की औरत के लिए देती है।

निष्कर्ष : जिस देश में नारी शक्ति का प्रतीक है लेकिन जब अपने प्रतीक होने वाले अत्याचारों या प्रताड़नाओं के

प्रश्नोत्तरी

डॉ. रंजीत रविशैलम

1. निराला कृत 'तुलसीदास' कितने छंदों में रचित है?
2. नवगीत परंपरा का आरंभ किस कृति से माना जाता है?
3. हिंदी भाषा का पहला राजनीतिक नाटक किसे माना जाता है?
4. 'तट के बंधन' किसका उपन्यास है?
5. 'अतिथि देवो भव' किसका कहानी संग्रह है?
6. 'कामायनी और प्रसाद की कविता गंगा' किसका आलोचनात्मक ग्रंथ है?
7. 'अंतस्तल' गद्‌यकाव्य का रचयिता कौन है ?
8. 'काव्यादर्श' का रचयिता कौन है?
9. इलियट के अनुसार काव्य क्या है?
10. 'आत्मनेपद' किसका निबंध संकलन है?
11. किस रचना को हिंदी का प्रथम दलित उपन्यास माना जाता है?
12. 'सहजता का कवि' किसे माना जाता है?
13. 'यौवन की रमणीयता का काव्य' किसे कहा जाता है ?
14. "यूरोप में 'बिहारी सतसई' के समकक्ष कोई रचना नहीं है"-किसका कथन है ?
15. नंददास के गुरु कौन थे?
16. 'आरती कीजै हनुमान लला की'- किसने कहा?
17. भूषण को 'भूषण' की उपाधि किसने प्रदान की?
18. रांगेय राघव का असली नाम क्या है ?
19. बाइबिल का हिंदी अनुवाद किसने किया ?
20. 59 वाँ ज्ञानपीठ पुरस्कार किसे प्राप्त हुआ?

(उत्तर : पृष्ठ 48)

विरुद्ध स्त्री आवाज बुलंद करती है तो वह वेश्या या कुलटा के नाम से अभिहित हो जाते हैं। इस दुष्नाम से डर कर अधिकांश नारियाँ अपनी ओर होने वाले अत्याचारों को चुपचाप सहती हैं। सुधा अरोड़ा की कहानियाँ स्त्री की अस्मिता को कुचलनेवाली पुरुष वर्चस्ववादी समाज पर प्रश्न करती है। उनकी कहानियों में वह किसी समस्या का हल निकालने के बदले पाठक के मन में एक ऐसी चिंगारी फेंक देती हैं जिसके ज़रिए पाठक खुद उस समस्या का हल निकालने के लिए विवश हो जाते हैं।

संदर्भ सूची

1. सुधा अरोडा, एक औरत की नोटबुक, पृ.सं 9, मानव प्रकाशन, कोलकता
2. सुधा अरोडा, बुत जब बोलते हैं (कहानी संग्रह), आवरण पृष्ठ, लोक भारती प्रकाशन, नई दिल्ली
3. सुधा अरोडा, एक औरत की नोटबुक, पृ.सं:10, मानव प्रकाशन, कोलकता
4. सुधा अरोडा, काला शुक्रवार, पृ.सं:128, राजकमल पेपर बैक्स, नई दिल्ली
5. सुधा अरोडा, काला शुक्रवार, पृ.सं:128, राजकमल पेपर बैक्स, नई दिल्ली
6. सुधा अरोडा, एक औरत की नोटबुक, पृ.सं:53, मानव प्रकाशन, कोलकता
7. सुधा अरोडा, काला शुक्रवार, पृ.सं:131, राजकमल पेपर बैक्स, नई दिल्ली

शोध निर्देशिका :
डॉ. एल.तिल्लैसेल्वी,
आचार्या, हिन्दी विभाग,
अण्णामलै विश्वविद्यालय,
अण्णामलै नगर 608 002.

शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
अण्णामलै विश्वविद्यालय,
अण्णामलै नगर - 608 002.

समकालीन संदर्भ में भारतीयता

रोषिनी एस

भारतीय संस्कृति विश्व की सबसे पुरानी संस्कृतियों में से एक है, जिसमें बहुरंगी विविधता और सांस्कृतिक विरासत है। प्राचीन काल से ही भारत अपनी संस्कृति एवं सभ्यता के लिए मशहूर है। भारतीय संस्कृति का सर्वाधिक व्यवस्थित रूप हमें सर्वप्रथम वैद्धिक युग में प्राप्त होता है। प्रारंभ से ही भारतीय संस्कृति अत्यंत उदात्त,समन्वयवादी,सशक्त एवं जीवंत रही है। भारतीय विचारक आदिकाल से ही संपूर्ण विश्व को एक परिवार के रूप में मानते हैं। अपनी विशाल भौगोलिक स्थिति के समान यहाँ अलग-अलग भाषाएँ बोलते हैं, अलग-अलग कपड़े पहनते हैं,भिन्न-भिन्न धर्म का पालन करते हैं, भोजन करते हैं लेकिन स्वभाव एक जैसा होता है। नानात्व में एकत्व का दर्शन भारतीयता है।"[1] चाहे कोई खुशी का अवसर हो या दुख का क्षण,लोग सच्चे दिल से इसमें भाग लेते हैं, एक साथ उसका अनुभव करते हैं। पूरा समुदाय या आस पड़ोस एक अवसर पर खुशियां मनाने में शामिल होता है।

"भारतीयता संस्कृतिक दृष्टि है। यह वह संस्कृति है जो हमारी मिट्टी की बनी हुई है। हमारे जल,वनस्पति और वायु से ही उसका संबंध है।"[2] भारतीय संस्कृति समस्त मानव जाति का कल्याण चाहती है। भारतीय संस्कृति में प्राचीन गौरवशाली मान्यताओं एवं परंपराओं के साथ ही नवीनता का समावेश भी दिखाई देता है। भारतीय संस्कृति विभिन्न सांस्कृतिक धाराओं का महासंगम है। हमारे पास वेद, उपनिषद, पुराण,रामायण, महाभारत, गीता जैसे धर्म ग्रंथ हैं। वे सब मनुष्य के सांस्कृतिक उन्नति को उद्‌घाटित करते हैं। भारतीय संस्कृति में विभिन्न जातियों के प्रत्येक संस्कृति के श्रेष्ठ विचार अपने में समेट लिया है। यहाँ के निवासियों के समन्वय की प्रक्रिया के साथ ही बाहर से आने वाले शाक्तहूण, यूनानी एवं कुशाण भी यहाँ घुल मिल गए हैं। अरबों,तुर्कों और मुगलों के माध्यम से इस्लामी संस्कृति का आगमन हुआ। इसके बावजूद भारतीय संस्कृति ने अपना पृथक अस्तित्व बनाए रखा और नवागत संस्कृतियों की श्रेष्ठ विचारों को उदारतपूर्वक ग्रहण किया है।

भारतीय संस्कृति इतनी व्यापक होते हुए भी आज कई कारणों से संकटग्रस्त है। आधुनिकता के पीछे भागकर आज भारतीय संस्कृति के मूल्यों पर परिवर्तन दिखाई देता है। गाँव और शहरों के सामाजिक जीवन में और जन जीवन के दृष्टिकोण में चिंताजनक परिवर्तन आया है। भारतीय समाज में भी अब समाज के स्थान पर व्यक्ति प्रमुख होता जा रहा है। इसलिए स्वार्थपरता बढ़ गई है। आपसी प्रेम और भाईचारा नष्ट हो चुकी है। भौतिकता की चकाचौंध से सभी भटक गए हैं। सर्वत्र कृत्रिमता और यांत्रिकता के कारण भय, संत्रास, कुठा,आतंक आदि का वातावरण का जन्म हुआ है। मानवीयता पूर्ण रूप से यांत्रिक बन गया है। स्वार्थता ने भारतीय जीवन को संकीर्ण बना दिया है। हमारी मलिन मानसिकता एवं संकीर्ण विचारों ने भारतीयता को कलुषित बन दिया। आधुनिकता के पीछे भागकर सत्य,धर्म,परिवार,कर्म आदि के प्रति हमारे विचार भी कम होती जा रही है। प्रौद्योगिकीकरण की प्रवृत्ति आर्थिक स्थिति को मजबूत किया लेकिन मानसिक स्थिति को कमजोर कर दिया है। 'वसुधैवकुटुम्कबम' को छोड़कर एकल परिवारों में बढ़ गया है। परिवार

भारतीय समाज की सबसे छोटी और महत्वपूर्ण इकाई है। हमारे यहां आदिकाल से संयुक्तपरिवार प्रचलित थी। किंतु विकास एवं आधुनिकीकरण के परिमाणस्वरूप आये दबावों के कारण परिवारों का विघटन बदलते समय की आवश्यकता बन गयी । मानवीय भावनाएँ जैसे एक दूसरे के प्रति अपनत्व,त्याग, प्रेम,परंपरा,संस्कार,सभ्यता आदि का नाश दिखाई पड़ रहा है। पारिवारिक संबंधों एवं मूल्यों का कोई स्थान नहीं है। परिवारवालों के बीच की आपसी रिश्ता नष्ट हो गयी। मोबाइल फोन, कंप्यूटर आदि पर समय व्यतीत करते हैं। घर में क्या हो रहा है, आसपास में क्या हो रहा है, इन सब के बारे में वे अनजान है। माता-पिता हमारे जीवन में शिक्षक एवं गुरु होते हैं। वे प्यार और स्नेह से हमारे जीवन को खुशियाँ भर देते हैं। लेकिन आज की स्थिति ऐसी नहीं है। बुजुर्गों के लिए परिवारवालों के पास कोई समय नहीं है। उनके प्रति प्रेम की कमी है। एकल परिवार प्रणाली के उद्भव का परिणाम है वृद्धाश्रम। पारिवारिक उपेक्षा, प्रौद्योगिकी,बेहतर अवसरों की तलाश में परिवारों के विघटन जैसे कारण से बड़े लोगों को वृद्धाश्रम भेजने के लिए विवश होते हैं। आज के लोग फ्लैट संस्कृति पसंद करते हैं। बड़े शहरों में लोगों के लिए रहने की जगह की कमी होती जा रही है, इसे पूरे करने के लिए अपार्टमेंट या फ्लैट बनते जा रहे हैं। इससे हमारी पारिवारिक संरचना में परिवर्तन आया है। परिवार में मां-बाप का स्थान पालतू जानवर से भी गयाबीता है। आजकल लोगों के मन में दूसरों के प्रति कोई सहानुभूति या प्यार की भावना नहीं है। किसी चीज़ को एक बार इस्तेमाल करके फेंक देने की प्रथा या 'भोगे फेंको संस्कृति' आज सर्वत्र देख सकता है। इसका सबसे ज्यादा असर हमारे समाज पर पड रहा है।

वर्तमान युग में वैज्ञानिक चिंतन एवं विकास के कारण मनुष्य की तार्किक एवं भौतिक चेतना का विकास हुआ है। इससे उसकी भाव संवेदना का ह्रास हो रहा है। पाश्चात्य संस्कृति, उपभोक्तवादी संस्कृति, व्यवसायवाद आदि के कारण भारतीय समाज की मूल मान्यताएँ एवं परंपराएँ खत्म होने लगी है। आयातीत वस्तुओं के प्रति लोगों का आकर्षण इतना बड़ा है कि भारतीय वस्तु विदेशी लेबल के साथ हमारे ही देश में सम्मान के साथ चली जाती है। बाज़ारवाद के आगमन से हमारा जीवन बाज़ार बन गया है। पैसे का महत्व भी बढ़ गया है। पैसे ही सब कुछ है। किसी के पास कुछ सोचे या समझने के लिए समय नहीं है।

भारत में मनुष्य अपने परिवार,समाज,विश्व और गुरु के प्रति आत्मसमर्पण की भावना का पोषण प्राचीनकाल से ही होता आ रहा है। अहिंसा, क्षमा, ममता, कर्म, भाईचारा, गुरु शिष्य संबंध, पुरुषार्थ, प्रकृति प्रेम, जीवन - मृत्यु - पुनर्जन्म,अध्यात्म तथा मोक्ष आदि हमारा मूल मंत्र है। ये विशेषताएँ भारतीय संस्कृति को विश्व की अन्य संस्कृतियों से अलग करती हैं। लेकिन 21वीं सदी में भारतीय संस्कृति का मूल्य लुप्त हो रहा है। हमें एक ऐसी दुनिया का गठन करना है जिसमें हमारे पुराने एवं सभ्य संस्कृति होना है, आधुनिकता के अच्छा गुण होना है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. भारतीयता की पहचान, डॉ. विद्यानिवास मिश्र
2. संस्कृति के चार अध्याय, डॉ .रामधारी सिंह दिनकर
3. ए.अरविन्दाक्षन, साहित्य संस्कृति और भारतीयता
4. संतोषकुमार चतुर्वेदी, भारतीय संस्कृति

सहलेखक : डॉ षाजी एन

शोधछात्रा, एस एन कॉलैज, कोल्लम

हाशिएकृत समाज की अभिव्यक्ति-
‘अंकुर’ के विशेष संदर्भ में

डॉ राजन टी के

श्याम बनेगल भारतीय सिनिमा के एक सशक्त हस्ताक्षर हैं। भारत के हाशिएकृत लोगों की ज़िंदगी को फिल्मों के माध्यम से मुख्यधारा समाज के सम्मुख लाने में उनकी भूमिका विशेष उल्लेखनीय है। उन्होंने हाशियेकृत समाज की वेदना, उनकी ओर होने वाले अन्याय एवं अत्याचार, उनकी गरीबी, उनके संघर्ष जैसे विभन्न समस्याओं को अपने फिल्म का विषय बनाया है। वर्ण और जाती का अधीशत्व, सामंतवाद, उच्च वर्गीय लोगों का शोषण, पुरुष सत्तात्मक समाज की नीति व्यवस्था एवं लिंगबोध जैसे ज्वलंद मुद्दों को उन्होंने बहस में लाने का प्रयास किया हैं। उन्होंने समाज के निम्न, शोषित, दमित लोगों को अपनी फिल्मों में वाणी देने का प्रयास किया है।

श्याम बेनेगल ने अपनी फिल्मों में स्वातंत्र्योत्तर भारत की यथार्थ स्थिति को प्रस्तुत किया है। अंकुर (1974), निशांत(1975), मंथन(1976), जुनून(1979), कलियुग(1981), मंडी (1983),त्रिकाल (1985),मामों (1994), सरदारी बेएगाम (1996) आदि उनके बहुचर्चित फिल्म हैं। भारत समाज से ग्रसित अनेक सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक समयस्याओं का चित्रण इनमें विद्यमान हैं। बेनगल ने अपने प्रथम फिल्म से लेकर अंतिम फिल्म तक समाज के हाशिएकृत वर्गों की ज़िंदगी को चित्रबद्ध किया है। उन्होंने इसे अपना सामाजिक दायित्व के रूप में स्वीकार किया है। स्वातंत्र्योत्तर भारत में दलितों की ज़िन्दगी में कोई परिवर्तन नहीं आया है। आज भी वे अत्यंत भयावह स्थिति से गुज़र रहे हैं। वर्तमान की राजनीति और सत्ता उन्हें मानवोजित जीवन जीने से वंचित कर रहे हैं। दलित आज भी हर प्रकार के शोषण, अत्याचार आदि के शिकार बन रहे हैं। वे सवर्णों के मार-पीट झेलते रहते हैं। सदियों से यही उनकी जीवन की वास्तविकता है, उनका इतिहास भी। परंतु दलित समाज के इस अभिशप्त जीवन को पूरे यथार्थ के साथ साहित्य तथा अन्य क्षेत्रों में अभिव्यक्त करने का प्रयास अब तक नहीं हुआ है। भारतीय फिल्म भी इसका अपवाद नहीं है। बीसवीं शदी के अंतिम दशकों में दलित साहितत्यकारों के माध्यम से साहित्यिक क्षेत्र में इस कमी को दूर करने का प्रयास हुआ है। उन्होंने दलित जीवन पर आधारित महत्वपूर्ण रचनाओं का सृजन किया है। उनकी रचनाओं के संबंध मे खूब चर्चाएँ हुई। बड़ा वाद-विवाद हुआ। अन्त में उनकी रचनाओं को मुख्यधारा समाज के सामने खूब स्वीकृति मिली। लेकिन भारतीय सिनेमा के क्षेत्र में दलित जीवन पर आधारित बहुत कम सिनेमाओं का ही सृजन हुआ है। दूसरे शब्दों में कहे तो दलित जीवन और उनकी समस्या अब भी हाशिए पर है।

हिन्दी में चंडीदास (1934), अछूतकन्या (1936), सुजाता (1959)आदि फिल्म सामाजिक समस्याओं पर आधारित हैं। इन सब की मुख्य समस्या जातीय भेद-भाव है। इनमें सवर्ण नायक और दलित नायिका के बीच के प्रेम-संबंधों के बारे में संकेत किया गया है। इनमें दलित नायिका की वेदना, गरीबी, जातीयता आदि की अभिव्यक्ति होती है। नायक कुछ उदार, दयालु और प्रगतिशील चरित्र वाला है। पर दलित जीवन की ओर होने वाले अन्याय,शोषण, दमन विद्रोह आदि का संकेत इन फिल्मों मे नहीं किया गया है। लेकिन श्याम बेनेगल और उनकी फिल्म अंकुर (1974), निशांत (1975), मंथन(1976) आदि इन मुख्यधारा फिल्मों से कुछ भिन्न मानते हैं। यहाँ उनकी प्रथम फिल्म ‘अंकुर’ में उपर्युक्त समस्याओं को किस प्रकार आविष्कार किया गया है? फिल्म के परंपरागत रीतिशास्त्र को क्या यह फिल्म तोड़ता है? हाशिएकृत समाज के संघर्ष और विद्रोह को अंकुर में अभिव्यक्त करने में श्याम बेनेगल सफल बन गया हैं आदि मुद्दों पर विचार विश्लेषण करने का प्रयास यहाँ किया गया है।

श्याम बेनगेल के 'अंकुर' का प्रदर्शन 1974 में हुआ है। गरीब और अशिक्षित दलितों के जीवन में व्याप्त जाति-पांति की भयावह त्रासदी को इसमें चित्रित किया गया है। मध्यवर्गीय समाज और दलित समाज के बीच के संघर्ष के साथ-साथ एक नए समाज का स्थापन भी इनमें प्रस्तुत किया गया है। 'अंकुर' दलित त्रासदी को उभारने में महत्वपूर्ण सिनेमा है।सवर्ण जमींदार वर्ग की हिंसात्मक मानसिकता एवं जातीय भेद-भाव को यह चित्र व्यक्त करता है।आनंद नाग और शबाना आज़मी इसके प्रमुख पात्र हैं। दलित नारी के जीवन त्रासदी को अत्यंत मार्मिक ढंग से इसमें अभिव्यक्त किया है। अंकुर की नायिका लक्ष्मी (शबाना आज़मी) जो दलित नारी है। किश्तरय्या उसका पति है। वह बहरा और गूंगा है। साथ ही साथ शराबी भी है।वह कुम्हार का काम करता था। लेकिन बदलते परिवेश के कारण लोगों के जीवन-रीति में परिवर्तन आया। उसके जीवन में भी कुछ परिवर्तन आया। पर वह गुणात्मक नहीं है पर लोग मिट्टी के बर्तनों को छोड़कर अलूमिनियम (Aluminium) के बर्तनों का इस्तेमाल करते हैं। फलस्वरूप किश्तरय्या बेकार हो जाता है। उसके घर की वास्तविकता का चित्रण यहाँ बेनेगल ने दिखाया है। घर की आर्थिक विपन्नता के कारण उसकी पत्नी लक्ष्मी अपने पेट भरने के लिए इधर-उधर से कुछ चुरा लेती है। घर की इस दयनीय हालत को लक्ष्मी के मुँह से बेनेगल व्यक्तकरता है। लक्ष्मी कहती है- "खाने को खाना नहीं, पहने को धोती नहीं, पर पीने को होना, मैं एक हूँ, इधर से उधर, उधर से चुरा कर खाने को ले आती है।और इसमें शर्म नहीं है।"[1] आर्थिक विपन्नता या गरीबी दलित जीवन की सचाई है। सवर्ण समाज की शोषण व्यवस्था इसके पीछे है। दिन-रात कमरतोड़ मेहनत करने पर भी दो जून की रोटी के लिए दलितों को दूसरों के सामने हाथ पसारना पड़ता है। भारत की आर्थिक एवं सामाजिक व्यवस्था इसके पीछे है। दिन-रात करमरतोड़ मेहनत करने पर भी दो जून की रोटी के लिए दलितों को दूसरों के सामने हाथ पसारना पड़ता है। भारत की आर्थिक एवं सामाजिक व्यवस्था यही है। इसका कारण यह है कि भारत के अधिकांश दलित भूमिहीन मज़दूर है। ज़मीन का अधिकार सवर्ण जमींदारों के हाथों में हैं। इसलिए दलितों को अपनी आजीविका चलाने के लिए सवर्णों के घर-ज़मीनों में दिन-रात काम करना पड़ता है। वे अपना खून पसीना करके काम करते हैं। पर आजीविका चलाने के लिए उचित वेतन नहीं मिलते हैं। पेट भरने के लिए अच्छा भोजन नहीं मिलता। कुछ अनाज ही वेतन के बदले मिलते हैं। ऐसी हालत में दलित क्या करें। कभी तो चोरी करके अपना भूख मिटाने के लिए विवश हो जाता है।अपने मालिक सूर्या के ज़मीन-जायदाद का देखभाल करते हैं लक्ष्मी और किस्तरया। वे दिन-रात उसके घर-ज़मीन में काम करते हैं। लेकिन लक्ष्मी अपने पेट भरने के लिए ज़मींदार के घर से कुछ अनाज चोरी करती है। उसकी यह विवशता अपने शराबी पति के प्रति उसके आक्रोश के रूप में निकल जाता है। यहाँ बेनेगल जी ने स्वातंत्र्योत्तर भारत के दलित जीवन की यथार्थता पर विचार किया है।

किश्तरय्या अब बैल गाड़ी चलाता है। गाँव के बच्चों को स्कूल ले जाता है। लेकिन वह हमेशा शराब के नशे में है। लक्ष्मी और किश्तरय्या की कोई संतान नहीं है । लक्ष्मी अपने पति से प्यार करती है। लक्ष्मी का मन बच्चे के लिए तड़प रही है। लेकिन बच्चा न होने के कारण उसके मन में अपने पति के प्रति घृणा है। एक दिन लक्ष्मी पति की ओर अपना विद्रोह प्रकट करती है। किश्तरय्या रात में शराब के नशे में झोपड़ी में प्रवेश करता है। तब लक्ष्मी की वेदना आक्रोश के रूप में बाहर निकलती है। शराब का बोतल फाड़कर वह कहती है "पीना नहीं छोड़ोगे? सब मिटटी में मिलाकर रख दो एक दिन।"[2] यहाँ बनेगल मातृत्व के लिए तड़पने वाली स्त्री-मन की असहनीय पीड़ा को दर्शाता है।

सवर्ण ज़मींदार वर्ग के अमानवीय व्यवहार की ओर भी फिल्म में संकेत किया गया है। अपने घर-ज़मीनों में काम करने वालों के प्रति ज़मींदारों की मानसिकता क्या है? उनसे कैसा व्यवहार करता है? किश्तरय्याऔर लक्ष्मी की ओर किये गए अत्याचार इसका उदाहरण है। किस्तरय्या चोरी करके शराब पीता है तो ज़मींदार के कानों में खबर सुनता है। अपने घर- ज़मीनों में काम करने वाले होने पर

भी सूर्या उसे बुरी तरह मार-पीट करता है। उसके बाद किस्तरय्या के सर मुंडन करके गधे पर बिठाकर पूरा गाँव भ्रमण कराता है। दूसरी घटना लक्ष्मी के साथ है। चोरी के कारण अपमानित किस्तरय्या गाँव छोड़कर चला जाता है। तब लक्ष्मी अकेली रह जाती है। ज़मींदार का बेटा सूर्या उसे अपने वश में फँसा लेता है। लक्ष्मी गर्भवती बन जाती है। तबीयत ठीक न होने के कारण सूर्या की पत्नी सरो लक्ष्मी को उसकी झोपड़ी जाने को कहती है। लेकिन भूख से पीड़ित लक्ष्मी एक दिन ज़मींदार के घर जाती है। वहाँ से कुछ अनाज चुरा लेती है। वह रंगे हाथों पकड़ लेती है और उसे घर से निकाल देती है। 'अंकुर' में दलित समाज की ओर होने वाले इस अमानवीय व्यवस्था की ओर संकेत किया गया है।

प्राचीन काल से ही भारतीय समाज में अनेक कुरीतियाँ प्रचलित हैं। हिन्दू वर्णाश्रम व्यवस्था द्वारा संचालित सामाजिक संरचना इसके पीछे हैं। सवर्ण समाज ने जाति और वर्ण को सामाजिक संरचना का आधार बनाया है। इससे भारत के दलित वर्ग को अनेक अत्याचारों को झेलना पड़ता है। जाति व्यवस्था के कारण भारत में दलित समाज को मान-सम्मान के साथ जीने का अधिकार नष्ट हो गया। छुआ-छूत, अस्पृश्यता जैसी सामाजिक कुरीतियाँ उन्हें समाज से बेदखल कर दिया गया। उनके साथ रहन-सहन, खान-पान आदि मना कर दिया गया। अतः भारतीय समाज मनुवादी वर्ण व्यवस्था उल्लंखन करने के लिए तैयार नहीं है। 'अंकुर' में इसका चित्र हमारे सामने प्रस्तुत करता है। सूर्या की पत्नी पति के साथ रहने के लिए घर आती है। तब लक्ष्मी दोनों को चाय देती है। सूर्या बेहिचक से चाय पीता है तो सरो इनकार करती है। वह अपनी परंपरा को मानती है। उसका उल्लंखन करने के लिए तैयार नहीं है।वह सूर्या से कहती है -"एक अछूत स्त्री से बनायी गयी चीज़ों को वह खा नहीं सकती। आगे वह कहती है वह खुद घर के कार्य संभालेगी। लक्ष्मी बाहर झाडू लगाने का कार्य करे।"[3]

सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में शिक्षा की अहं भूमिका है। शिक्षा मानव समाज को जानवरों से अलग करती है। मानव में नए विचारों को प्रस्फुटित करने की प्रेरणा शिक्षा के द्वारा ही संभव है। सामाजिक परिवर्तन की दिशा में यह एक मशाल है। शिक्षा समाज को ग्रसित अंधविश्वास और अत्याचार को दूर करने का हथियार है। हम जानते हैं कि भारत कई तरह के सामाजिक बुराईयों से ग्रस्त था। अस्पृश्यता, छुआ-छूत, गुलामीपन, जातीय अहंबोध आदि सामाजिक असमानताएँ यहाँ मौजूद थी। सुशिक्षित समाज इन असामानताओं के खिलाफ अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। वे इस व्यवस्था परिवर्तन की प्रक्रिया में अपना दायित्व निभाता है। 'अंकुर' में चित्रित सूर्या का चरित्र इस व्यवस्था परिवर्तन में एक हद तक सफल है। वह शिक्षित युवा पीढ़ी का प्रतिनिधि है। वह अपने समाज में प्रचलित सामाजिक अत्याचारों का इनकार करता है। वह समाज में प्रचलित अस्पृश्यता ,जातीय भेद-भाव जैसे सामाजिक अत्याचारों को मानने के लिए तैयार नहीं है। सूर्या अपनी नौकरानी के साथ मिलजुल कर रहता है। वह लक्ष्मी के हाथों से चाय पीता है,खाना खाता है। उस पर अपनी कामवासना की पूर्ती भी करता है। गाँव के अन्य लोगों से वह अपना विचार व्यक्त करता है। चन्दा इकट्ठा करने के लिए आए स्वामी से सूर्या कहता है- "मैं जात-पांती को न मानता हूँ।"[4] जब उसके पिता उसे मिलने आए तब लक्ष्मी को घर के अंदर देख कर वह नाराज हो जाता है। उसे घर के बाहर निकालने की बात उठा कर सूर्य पर झिढ जाता है। तब सूर्य अपने पिता से कहता है- "वह भी इंसान है।"[5] यहाँ सूर्या जैसे आधुनिक शिक्षित युवा पीढ़ी की प्रगतिवादी मानसिकता को बेनेगल अभिव्यक्ति करते हैं। यहाँ सूर्या के कथन में भारत की परंपरागत सामाजिक व्यवस्था का उल्लंखन करके एक नई व्यवस्था को स्थापित करने की प्रेरणा है। सूर्या के पिता परंपरागत रीति-रिवाजों को पालन करने वाला हैं। वह वर्णाश्रम व्यवस्था के संरक्षक है। लेकिन उसकी मानसिकता के विरुद्ध अपना विचार प्रकट करने केलिए सूर्य तैयार हो जाता है।

हमारा समाज पुरुष-वर्चस्ववादी समाज है। इस समाज में घर और घर के बाहर नारी को समान हैसियत मिलना कोसों दूर की बात है। पुरुष-वर्चस्ववादी समाज की

परंपरागत धारणा है कि नारी का स्थान केवल अपना शारीरिक सुख मिटाने के लिए है। लेकिन पुरुषों की इसी धारणा के खिलाफ स्त्रियों ने अपना एतराज प्रकट की हैं। उनका विचार है कि पारिवारिक जीवन में पुरुष के साथ स्त्री का भी अपना अलग स्थान है। पुरुष के समान स्त्री को भी अपनी स्वतंत्रता पर विचार है। अपने मान-सम्मान की चिंता है। वह घर और घर के बाहर भी सम्मानित एवं मानवोचित जीवन जीना चाहती है। स्त्री की इस मान- सम्मान और स्वतंत्रता की अभिलाषा को श्याम बेनेगल ने 'अंकुर' में प्रस्तुत किया है। गाँव के राजम्मा नामक स्त्री अपने पति को छोड़कर दूसरे पुरुष के साथ जीना चाहती है। पर उसके घरवाले उसे पकड़ लेते हैं। वे उसे पंचायत के सामने लाते हैं। गाँव के सरपंच ने उसपर पूछताछ की। वह सरपंच के सामने अपने पति पर आरोप लगाती है। वह माँ बनना चाहती है। लेकिन उसके पति उस के लिए काबिल नहीं है। अपने नारीत्व की पूर्ति के लिए वह दूसरे मर्द के साथ जीना चाहती है। उसका कथन है- "मैं मार जाऊँगी ,लेकिन उसके साथ न जीऊँगी"[6] राजम्मा के घरवाले राजम्मा की बातों को मानने के लिए तैयार नहीं है। वे उसका विरोध करते हैं। अन्त में सरपंच के मुख्य कहता है "पति का इज्जत पत्नी का इज्जत है पर पट्टी भगवान के समान है। औरत सिर्फ मर्द की ही नहीं घरवाले की भी है"[7] यहाँ बेनेगल ने स्त्रियों को पुरुषों के पैरों के नीचे डालने का तथा उनके मार-पीट सहने की एक चीज़ के रूप में देखने वाले लोगों के प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्तकिया है।

सामाजिक अत्याचार, उत्पीडन,असमानता आदि से संत्रस्त है हाशिएकृत समाज। आधुनिक शिक्षा और आधुनिकता बोध, तथा बदलते सामाजिक परिदृश्य ने उत्पीडित समाज में परिवर्तन लाया। धीरे-धीरे सामंतवादी-ज़मींदारी सत्ता के खिलाफ विद्रोह उभारने लगे।इसके फलस्वरूप दमित-उत्पीडित जनता के मन में विमोचन की ललक अधिक होती है। शोषक तबके के प्रति उत्पीडित तबके का स्वर अधिक मुखरित होता है। सदियों की गुलामी से मुक्तिपाने की इच्छा दलितों के मन में हैं। अब वे सवर्ण ज़मींदारों के मार-पीट अधिक सहने के लिए तैयार नहीं है। वे अत्याचार, अमानवीय शोषण, मार-पीट आदि से मुक्ति चाहते हैं। इसलिए वे सवर्ण सत्ता का विरोध करते हैं। उसका इनकार करते हैं। बनेगल ने 'अंकुर' के अंतिम दृश्य में यह विचार हमारे सामने अभिव्यक्त किया है। लक्ष्मी का पति जो गाँव छोड़कर चला गया था अब वह घर लौट आता है। वह वास्तविकता को न समझकर गर्भवती पत्नी को देख कर खुश हो जाता है। वह अपने स्वामी जमींदार के कानों पर खबर देने के लिए भाग-दौड़ता है। तब जमींदार सूर्या उसे बुरी तरह मार-पीट करता है। यह देख कर लक्ष्मी अपने पति की रक्षा के लिए भाग-दौड़ती है। वह जमींदार से आक्रोश करती है- "अब तेरा काम नहीं होना ,पैसा नहीं होना ,तेरा कुछ नहीं होना।"[8] यहाँ उनकी मुक्ति की आवाज हम सुन सकते हैं। वह सवर्ण-जमींदार वर्गों के सालों से झेलने वाली गुलामी की जंजीरों को तोड़ने का प्रयास करती है। फिल्म के अंत में बेनेगलजी यह भी प्रस्तुत करते हैं कि एक बच्चा उस ज़मींदार के घर की खिड़कियाँ पत्थर से फाड़ देता है। हालांकी यह पत्थर उस घर की ओर नहीं, बल्कि पूरे भारतीय समाज से ग्रसित, अमानवीय शोषण, अत्याचार, गुलामी-, छुआ-छूत ,जातीय भेद-भाव आदि सामाजिक अत्याचारों के खिलाफ का एक विद्रोह ही है। सालों से हमारे समाज में प्रचलित मनुवादी वर्णाश्रम -व्यवस्था की ओर फेंकने वाला पत्थर है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि श्याम बेनेगल की प्रस्तुत फिल्म स्वतंत्र्योत्तर भारत की यथार्थता की अभिव्यक्ति है। समाज के दलित एवं हाशिएकृत समाज की ज्वलंत समस्यायें इसमें मुखरित हैं। निःसंदेह कहा जा सकता है कि सामाजिक परिवर्तन की ओर प्रेरणा देने वाली एक सशक्तफिल्म है 'अंकुर'। हाशिएकृत समाज की जिह्वा के रूप में निदेशक श्याम बेनेगल और उनकी फिल्म भारत में चिरकाल तक जीवित रहेगा।

संदर्भ

। . अंकुर -श्याम बेनेगल-((1974)

सहायक आचार्य , हिन्दी विभाग
केरल विश्वविद्यालय , कार्यवट्टम कैंपस

धार्मिक आईने में भारतेंदु युगीन व्यंग्य

डॉ अब्दुल लतीफ़

धार्मिक आडम्बरों की आलोचना के माध्यम से भारतेन्दुकालीन लेखकों ने भारतीय समाज को दलदल से निकलने का बीड़ा उठाया। वे जनसामान्य के मस्तिष्क पर से धर्म के परदे को हटाते का प्रयास करते हैं। इसके लिए उन्होंने व्यंग्य का सहारा लिया है। व्यंग्य के माध्यम से उन्होंने धर्म और पूंजी के गठजोड़ से बनी व्यवस्था पर गहरा आघात किया है।

भारतेंदु हरिश्चंद्र पहली बार हास्य और व्यंग्य को सामाजिक जीवन के यथार्थ से जोड़ते हैं और समाज की विसंगतियों को उजागर करते हैं। समाज में उपस्थित दुर्गुण, आलस्य, विलासिता, ऐश्वर्य- प्रदर्शन, चाटुकारिता, धर्म के नाम पर पाखंड आदि को भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अपने लेखन के केंद्र में रखा। सामान्य वर्ग की इन कमजोरियों के बीच स्वयं रहते हुए उन्होंने प्रबुद्धता, नैतिक प्रेरणा और अपने समाज को निस्संग दृष्टि से देखने की क्षमता प्राप्त की, जिससे वह स्वयं अपने वर्ग पर हंस सके। उसे व्यंग्य और कटाक्ष का विषय बना सके।

भारतेंदु के अधिकांश व्यंग्य निबंधों के विषय विदेशी शासन द्वारा भारतीय जनता पर भारी टैक्स लादने और देश में भेदभावपूर्ण कानून व्यवस्था का विरोध करना था। इसके अतिरिक्त धार्मिक या संप्रदायगत दंभ, अंधविश्वास, असहिष्णुता से ग्रस्त कट्टरपंथियों और पुनरुत्थानवादियों, जो नवीनविचारों को स्वीकारते नहीं हैं और किसी भी प्रश्न का हल वेदों में ढूंढने जाते हैं, की चुटकी भारतेंदु और उनके समकालीनों ने भली प्रकार ली है। 'पाखंड-विडंबन', 'वैदिक हिंसा हिंसा न भवति', 'अंधेर नगरी', 'विषस्य विषमौषधम' आदि प्रहसन धर्म को केंद्र में रखकर रचे गए हैं। इनमें उन्होंने धार्मिक रूढ़ियों की जमकर आलोचना की है।

'पाखंड विडंबन' में दिगंबर सिद्धांत और भिक्षुक बुद्धागम को अतिरिक्त हास्यास्पद बनाने के लिए ब्रज और राजस्थानी बोली का पुट दिया गया है। भिक्षुक 'श' और 'स' के स्थान पर 'छ', 'र' के स्थान पर 'ल', 'ट' के स्थान पर 'त', 'ठ' के स्थान पर 'थ' का प्रयोग करता है। इस भाषीय स्वरूप से उसके चरित्र के हलकेपन का एहसास होता है। इस नाटक में यह दिखाया गया है कि जो व्यक्ति तर्कों के सहारे दूसरे को फंसाते हैं वह कभी न कभी अपने ही जाल में फँस जाते हैं। कपालिनी जब दिगंबर से लिपटती है तब दिगंबर कहता है- "अहाहा! वाह रे! कपालिनीगल लगवारोसुख,अरी सुंदरी एक बार तो फेरर गरेसे लपटी जा। अरे ऐसी समय नांगो उचित नहीं,तान्सू लंगोटी लगाई लेउँ, तो ठीक परै।"[1]

अंत में भारतेंदु दिगंबर के मुंह से "सतोगुणी श्रद्धा साधुओं के चित्त में और कृष्ण की आराधना करने वाले के संग रहती है।"[2] कहलाकर भक्ति की श्रेष्ठता स्थापित करते हैं।

'वैदिक हिंसा हिंसा न भवति' भारतेंदु का प्रसिद्ध प्रहसन है, जिसमें वेद, शास्त्र, पुराण, तंत्र आदि का सहारा लेकर बलि और मांससेवन की निंदा की गई है, साथ ही धर्म के नाम पर होने वाले अनाचार पर व्यंग्य किया गया है। भारतेंदु अपने नाटकों में निम्न वर्ग के लोगों को शामिल करते हैं और धर्म के ठेकेदारों पर करारा व्यंग्य करते हैं। विदूषक एक जगह वेदांती की खिल्ली उड़ाते हुए कहता है- "आप वेदांती अर्थात बिना दांत के हैं।"[3] इस नाटक के तृतीय अंक में पुरोहित गिरता पड़ता नाचता है और मांस मदिरा के समर्थन में गीत गाता है। लेखक धर्म में फैली दुष्टता और पाखंड का चित्रण करना चाहते हैं कि किस प्रकार दूसरे को धर्म, न्याय और सत्य का ज्ञान देने वाला पुरोहित स्वयं मांस मदिरा का भक्षण करता है। कथनी और करनी में आये अंतर को भारतेंदु व्यंग्य के माध्यम से पाठकों के सामने लाते हैं ताकि धर्म के नाम पर अंधभक्त हुए भक्तों की आंखें खुल सके-

"रामरस पियो रे भाई , जो पीए सो अमर हो जाई।/यह माया हरि की कलवारिन मद पियाय राखा बौराई।/मीन काट जल धोइए खाए अधिक पियास।/अरे तुलसी प्रीत

सराहिए मूए मीत की आस।/जब से छोड्यों मांस-मछरिया सत्यानाश गयो।"[4]

इस युग के लेखक मांस, मदिरा, मैथुन आदि का वर्णन जिसका उल्लेख मनुस्मृति, पुराण काव्यों मिलता है, की भी धज्जियाँ उड़ाते हैं। शास्त्र की पंक्तियों को व्यंग्य का पुट देकर पाठकों के समक्ष परोस देना अपने आप में ही बड़ी बात है। वह भी उस समाज जब बनारस धार्मिक राजधानी कहलाती थी। भारतेंदु अपने नाटकों में चरित्रों को अतिरंजित और कौतूहलपूर्ण करके हास्य और व्यंग्य की सृष्टि करते हैं। उनका दूसरा प्रहसन प्रेमजोगिनी है, जिसके प्रथम अंक की शुरु आत ही मंदिरादर्श के रूप में की गयी है। जहाँ आए हुए लोग भक्तिभाव की चर्चा कम करते हैं अपितु उस शहर में निवास करने वाले रईसों के जीवन की चर्चा अधिक करते हैं। 'धनदास' और 'बनितादास' मंदिर में 'भोजन और सोजन' देने वाली पंछी की तलाश में आते हैं। दूसरे दृश्य में काशी में निवास करने वाले दलाल, पंडित, गुंडा, गंगापुत्र, आदि पात्रों का जिक्र आता है; इसका मुख्य कर्म धर्म का भय दिखाकर आमजन से दक्षिणा प्राप्त करना होता है। अगले दृश्य में बुभुक्षित दीक्षित, गप्प पंडित, राय भट्ट, गोपाल शास्त्री आदि को पान, बीड़ी, सिगरेट, शराब, भांग आदि खाते पीते दिखाया गया है, जिनकी रुचि धार्मिक शास्त्रों में कम व्यसन में ज्यादा थी। वे मंदिर में आने वाली स्त्रियों को काम भाव से देखते हैं और एक पंडित दूसरे पंडित से उसकी खूबसूरती, अदा, सौंदर्य का जिक्र अट्टहास करने और मनोरंजन करने के लिए करता है। अब धनदास का बनितादास से कहा गया यह कथन ही देखें, "गुरु हींयाँ तो चाहे मुड़-मुडाए हो चाहे मुंह में एक्को दाँत ना होए, पताली खोल होए पर जो हथफेर दे सो काम की।"[5] स्त्रियों के प्रति यह नजरिया वह भी मंदिर जैसी पवित्र जगह में कहाँ तक जायज है। आजादी के इतने साल बाद भी धार्मिक स्थलों पर ही स्त्रियों का शोषण ज्यादा हो रहा है। धर्म के नाम पर होने वाले लूटपाट, भावनाओं के साथ खिलवाड़,स्त्रियों का शोषण, भक्तिके नाम पर ढोंग, आडंबर आदि का जीवंत दस्तावेज है 'प्रेमजोगिनी'। हर युग में दो मुंहे लोग पाए जाते हैं। दो मुंहे कहने का तात्पर्य दोहरे चरित्र वाले व्यक्तियों से है। उस समय में कुछ लोग ऐसे थे; जो समाज में व्याप्त बुराइयों का सर्वनाश करके एक सुंदर समाज की स्थापना करना चाहते थे। वहीं दूसरे लोग भी थे, जो राजभक्तिमें तल्लीन थे। अंग्रेजों की चाटुकारिता किया करते थे और अपना स्वार्थ साधा करते थे। देश को गुलाम बनाने में इन सत्ताभक्तों और चाटूकारों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। धर्म सुधार के नाम पर देश में कई संस्थाओं की स्थापना हो चुकी थी, लेकिन क्या वास्तव में इन संस्थाओं में काम करने वाले लोग धर्म सुधार या समाज सुधार चाहते थे? उत्तर है नहीं। इन संस्थाओं से लोग अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए जुड़े हुए थे। उन्हें समाज से कोई लेना-देना नहीं था। विधवा विवाह, बाल विवाह, समाज सुधार और धार्मिक पाखंड पर सुधारक बाहर बढ़िया-बढ़िया भाषण देते तो थे, लेकिन घर में आकर सब शून्य। जो व्यक्ति अपने घर में ही सुधार नहीं कर सकता है, वह बाहर दुनिया बदलने का कितना भी ज्ञान दे आय, कुछ नहीं हो सकता। बालकृष्ण भट्ट अपने एक निबंध में ऐसी दोहरी मानसिकता रखने वाले समाज के लोगों और धर्म के नाम पर फैलाए जाने वाले अंधविश्वासों पर कटाक्ष करते हैं- "बाबू साहब आर्य समाजी और ब्रह्म समाजी हैं और थियोसोफी में अव्वल दर्जा कायम करते हैं, घर में बहू जी भूत पूजनी समाज की प्रेसिडेंट हैं। बाहर पंडित जी साहब विधवा विवाह,बाल विवाह, समाज संशोधन पर जोश खरोश से भरे नए-नए लेक्चर झाड़ा करते हैं, पर घर में पंडित जी साहब के पांच वर्ष की एक कन्या है। पंडिताइन को पानी नहीं पचता। कन्या पांचवर्ष की हो गई, सगाई कहीं पक्की अब तक ना हुई।"[6]

19वीं सदी के अंत में हिंदुओं के बीच कुछ संस्थाएँ नवजागरण लाने का काम कर रही थीं-1) ब्रह्मसमाज 2) आर्य समाज 3) जाति सभाएँ या कायस्थ महासभा। 1830 ईसवीं में बना ब्रह्मसमाज भारतीय नवजागरण का सबसे पहला संगठन था, जिसने धार्मिक सुधार को पूरे भारत में फैलाने की कोशिश की। बंगाल से बाहर उसकी शाखाएं पंजाब, महाराष्ट्र, मद्रास, मंगलौर, बिहार आदि राज्यों में खोलीं गयीं; लेकिन इसका विस्तार पश्चिमोत्तर प्रांत में नहीं हो पाया। इसी वजह से भारतेंदु और बालकृष्ण भट्ट आदि ने इसका कड़ा विरोध किया। 19वीं सदी के धार्मिक आंदोलन में एक आंदोलन को थियोसोफिकल सोसाइटी का था जो आसल में पुरानी मान्यताओं की वकालत करता था; उन्हें वैज्ञानिक साबित करने की कोशिश करता था। रूसी महिला ब्लैवेहसकी और कर्नल अल्काट भारत में

इसकी शाखा खोलते हैं। 'ब्लैवेहसकी' मृत आत्माओं को बुलाने का दावा रखती थीं। भारत आकर पहले उन्होंने आर्य समाजियों से उन्हीं जैसी बातें कीं और उन्हें वैदिक मत का समर्थन भी मिला लेकिन तंत्र मंत्र में विश्वास करने के कारण आर्य समाज ने उनसे जल्द ही नाता तोड़ लिया। कायस्थ महासभा की स्थापना 1887 इस्वी में हुई, जिसमें विभिन्न धर्मों को मानने वाले सुधारक एक साथ शामिल होते थे इसीलिए यह संस्था समाज सुधार की बात करती थी धार्मिक समस्याओं या सवालों से नहीं स्थिति 19वीं सदी के भारतीय नवजागरण और धर्म सुधार में सबसे प्रभावशाली संगठन आर्य समाज था। स्वामी दयानंद सरस्वती इसके संस्थापक थे, जिन्होंने धर्म के क्षेत्र में चारों ओर फैले भ्रष्टाचार, पाखंड, अज्ञान, रूढ़िवाद और विवेकहीनता को उखाड़ फेंकने का बीड़ा उठाया था। हिंदू धर्म जो उस समय सैकड़ों संप्रदायों में विभक्त हो चुका था, को उन्होंने शुद्ध वैदिक आधार पर पुनर्गठित करने का काम किया। धर्म को मिथक और पौराणिक कहानियों से बाहर निकाल कर उसे तर्कशीलता, बुद्धि- विवेक, चारित्रिक अनुशासन और दृढ़ नैतिकता पर खड़ा करते हैं। वे मंदिर और मठों में बैठे बिचौलियों को हटाते हैं और अनुष्ठान और प्रथाओं को निरर्थक घोषित करते हैं। इसके लिए वे 'सत्यार्थ प्रकाश' का प्रकाशन करते हैं। इस समय समाज में इसाई धर्म का भी वर्चस्व बढ़ रहा था, इसलिए यह जरूरी था कि हिंदू धर्म को बचाया जा सके। इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतेंदु युग में धार्मिक सुधार आंदोलन की शुरुआत आर्य समाज, ब्रह्मसमाज, थियोसोफिकल सोसायटी, कायस्थ महासभा की स्थापना से होती है। इसका प्रभाव आमजन के साथ-साथ इस युग के लेखकों पर भी पड़ता है और वे धर्म के नाम पर होने वाले लूट खसोट का पर्दाफाश व्यंग्य का सहारा लेकर करते हैं।

बालकृष्ण भट्ट धर्म की नीव विश्वास को मानते हैं, तर्क को नहीं। धर्म केवल मान लेने की बात है। आंख मूंदकर धर्म संबंधी बातों को मानते जाओ, उसी में सबका कल्याण है। मजहब के नाम पर अपना स्वार्थ साधने वाले व्यक्तिधर्म के अंदर, जो इतनी विद्रूपता आई है, के सूत्रधार हैं। भारत के लोग जन्म से लेकर मृत्यु तक एक धर्म साधन के अलावा और कुछ नहीं जानते हैं। हमारी समझ इतनी संकीर्ण कर दी गई है कि हम धर्म और अपने देश के सिवा कुछ और सोचते ही नहीं हैं। दूर देशों ने क्या-क्या तरक्की कर ली? क्या आविष्कार हुआ? कौन-कौन देश क्या कर रहे है?, हमें कोई मतलब नहीं; हम बस पाप- पुण्य, स्वर्ग-नरक, लोक- परलोक के मायाजाल में फंसे रहते हैं। धर्म भ्रष्ट होने के डर से जो लोग नौकरी करने के लिए समुद्र पार नहीं करते थे, महिलाओं को पढ़ने नहीं देते थे, उनकी मानसिक संकीर्णता को अगर लेखकों ने अपने लेखन के केंद्र में रखा तो इससे आश्चर्य नहीं किया जाना चाहिए, क्योंकि यह सत्य है कि इस विभाजन ने कहीं न कहीं हमारी पराधीनता में बड़ी भूमिका निभाई है। हम बनी बनाई मान्यता और लोगों द्वारा बताए गए नियमों पर केवल चलते हैं, उसके सन्दर्भ में कभी तर्कपूर्ण निर्णय नहीं ले पाते। जिन देश में भूत- पिशाच, भवानी, डाकिनी- शाकिनी, मियां गाजी मिर्जा तक को लोग पूजते हों,उस देश के धर्म पर जब लोग दंभ भरते हैं, तो आश्चर्य होता है। कोई भी देश जब कुछ खोज करता है तब यही अंधभक्त कहते हैं कि अरे! इसके बारे में तो पहले ही हमारे वेदों में कहा गया है। सब यहीं से वे लोग ले गए हैं। अरे भाई! जब सब कुछ आपके पास मौजूद ही था तभी इतने दिन से आप क्या कर रहे थे- "जिस समय एक एक देश या जाति के लिए अलग-अलग गुण कर्म का विभाग किया जाता था और हिकमत विज्ञान विधा की बारी की राजनीति की गूढ़बातों के मर्म को समझने की अकिल मुल्क की तरक्की का जोश स्वाभिमान इत्यादि यूरोप अमेरिका आदि देशों को दिए गए उस समय धर्म की बारीकी और धर्म संबंधी विषयों के सूक्ष्म तत्वों के अनुसंधान की बारीक बिनी इस अभागे हिंदुस्तान को सौंपी गई जिसने धर्म के सूक्ष्म तत्वों का अनुसंधान करते-करते उसके सैकड़ों टुकड़े कर डाले और यहां तक धर्म के पीछे पड़ा कि इसने अपनी जिंदगी का हीर केवल धर्म को ही माना।खाना-पीना, उठना बैठना, सोना जागना, सब में धर्म का दखल कर दिया।"[7]

पश्चिम के देशों ने धर्म को अपने ऊपर उतना ही हावी होने दिया जितना मानवों की जरूरत थी। लेकिन यहां के लोगों ने धर्म को इतना बड़ा बना लिया कि मानव की जिंदगी से ज्यादा धर्म महत्वपूर्ण हो गया। धर्म के नाम पर होने वाले झगड़े और दंगे इसके जीवंत उदाहरण है। आँख मूँदकर लोग धर्म के ठेकेदारों के बहकावे में आते हैं और अपना सर्वस्व लुटा बैठते हैं बदले में उन्हें कुछ भी नहीं

मिलता। सारी मलाई दंगे का षड्यंत्र रचने वाला खा लेता है। बालकृष्ण भट्ट इन सारी समस्याओं से वाकिफ थे और खुलकर इसका विरोध कर रहे थे। वे धर्म के नाम पर स्वार्थ साधने वालों पर कटाक्ष करते हुए दिखते हैं- "अपने प्रयोजन के लिए ऐसे ऐसे वचन गढ़ के रख दिए हैं कि जिस में जो कुछ समझ भी रखता हो वह चुप रहे, जरा हिले डोले नहीं, जो गुमराह हो उन्हें गुमराह बना रहने दे टोके नहीं। इसी से हमने कहा धर्म की जड़ केवल विश्वास है तर्क नहीं और धर्म का यही महत्व है। आंख में पट्टी बांध एक ढर्रे पर लुढ़कते हुए जब तक चले जाओ तभी तक खैरियत है। धर्म में सब महत्व ही महत्व पाओगे जरा आंख खुली कि वह महत्व धर्म में नीली पोल हो जाएगी।"[8]

'कार्तिक स्नान' निबंध में बालकृष्ण भट्ट धर्म के नाम पर होने वाले दिखावे का पर्दाफाश करते हैं। पंच महाराज सुबह सुबह उठकर कार्तिक स्नान करने निकलते हैं तो उनकी मुलाकात एक अपाहिज से हो जाती है। ईश्वर का स्मरण करके कहते हैं पता नहीं सुबह सुबह किस के दर्शन हो गए। चले तो यह दान, पुण्य और धर्म करने लेकिन रास्ते में अपाहिज को देखकर जो मन में दुर्भावना उत्पन्न होती है; इससे साफ जाहिर होता है कि आप चाहे कितना भी दान पुण्य कर लें अगर मन साफ नहीं तो सब व्यर्थ है। चंदन, टीका या माला का जाप सब दिखावा है। हमें पहले अपने हृदय को पवित्र करना चाहिए- "चाहे जियरा जाए लगी कैसे छूटे।/लंबा टीका मधुर वाणी दगाबाज यही निशानी।"[9]

आगे धर्म के नाम पर होने वाली फ़िज़ूल खर्ची को बालकृष्ण भट्ट अपने निबंध का विषय बनाते हैं। हम देखते हैं कि समाज में मंदिर के नाम पर, पूजा अर्चन के नाम पर, झूठी मान्यताओं के नाम पर चंदा या धन दे देते हैं और हम कहते हैं कि हमने तो दान दिया है। हमारे धर्म शास्त्रों में धर्म के संबंध में दिया गया धन ही दान कहलाता है, दान की परिभाषा और उसका महत्व धर्म के ठेकेदारों ने खुद ही गढ़ा है और समाज के लोगों पर लागू भी किया। वे लिखते हैं कि अगर धर्म के नाम पर यही दिया जाने वाला दान स्कूल कॉलेजों के निर्माण में लगाया जाए, समाज के विकास में लगाया जाए तो देश का विकास संभव हो सकता है। यही दान भूखे गरीबों के पेट भरने में, फुटपाथ पर सोने वाले भिखारियों का तन ढकने के लिए या कचड़ा बीनते नौनिहालों का बचपन सवारने में लगा दिया जाए तो बेहतर भविष्य निर्मित हो सकता है। लेकिन हम ऐसा नहीं करेंगे क्योंकि हमारी सोच धर्म के डर के आसपास सी विकसित हुई है।

"मुसलमानों की शरा में आमदनी का चालीसवां हिस्सा खैरात करना लिखा है पर हम लोगों के धर्म शास्त्र में आमदनी का दसवाँ हिस्सा लिख दिया गया है। क्या कहना हम लोगों का दान- शूर दूसरा कौन होगा! देना ही तो हमने सीखा, लेना तो जानते ही नहीं। दूसरा ऐसा कौन दान- शूर होगा, देने में शूर हम और लेन शूर विलायत वाले।"[10] अर्थात हम लोगों की संस्कृति ऐसी रही है कि हम लोगों की मदद करना जानते हैं और हमारी इसी प्रवृत्ति का परिणाम यह रहा कि विलायती लोगों द्वारा हम वर्षों तक शोषित होते रहे।

प्रतापनारायण मिश्र भी अपने निबंधों में धर्म संबंधी मान्यताओं का तर्कपूर्ण खंडन करते हैं और एक स्वच्छंद समाज का निर्माण करना चाहते हैं। वह गोरक्षा निबंध में गाय पर होने वाली राजनीति और गाय की हत्या न करके अपनी भूमि को गुलाम बना देने वाले राजाओं पर कटाक्ष करते हैं। वह कहते हैं कि अगर गाय से आपको प्यार इतना ही है तो आप गाय से भी कहें कि वह शत्रुओं पर बाणों की बौछार करे। जब धरती ही नहीं बचेगी तब आप भी कहाँ रहेंगी माते। खैर! गाय पर राजनीति तो प्राचीन काल से चली आ रही है और यह वर्तमान समय में भी खूब हो रही है। गाय, गंगा, देश प्रेम, मंदिर मस्जिद आदि का संबंध जनता की भावनाओं से रहा है और इस भावनात्मक लगाव को पकड़कर सत्ताधीश उसपर आघात करता है और चुनाव जीत जाता है। निबंधकार जनता को इन सब चीजों से भावात्मक लगाव को कम करके, धर्म संबंधी तिलस्म से बाहर निकालना चाहते हैं- "हिंदू वीरों ने गोरक्षा के विचार से शस्त्र संचालन का परित्याग करके हार मान ली अथवा प्राण और पृथ्वी से हाथ धो बैठे। इस रीति की कार्रवाई धर्म कार्य की दृष्टि से चाहे जैसी समझी जाए पर नीति शास्त्र के अनुसार समय विरुद्ध होने के कारण उचित नहीं कही जा सकती। थोड़ी सी गौवों के प्राण बचाकर धरती से गँवा बैठने और अन्य धर्मियों को अधिक गोवध का सुभीता देने से यह उत्तम होता कि जहाँ धरती माता के उद्धारार्थ युद्ध क्षेत्र

में बहुत से ब्राह्मण क्षत्रिय मरने को सन्नद्ध थे वहाँ थोड़ी सी गौवों से भी यह प्रार्थना करके शत्रु समुदाय पर शस्त्र वर्षा कर दी जाती कि माता! धरती देवी की रक्षा के बिना, न हमारी रक्षा संभव है न तुम्हार। स्मात उसके लिए जैसे हम लोग अपना रक्त बहाने में उपस्थित हैं वैसे तुम भी प्राण विसर्जन करने से मुंह ना मोड़ो।"[11]

समय-समय पर धर्म के नाम पर समाज में अफवाह फैलती रहती है। यह अफवाह निश्चित षड्यंत्र के द्वारा कभी-कभी फैलाई जाती है। जब कोई अफवाह समाज में इस कदर फैलती है तो भक्तगण में बस बह जाते हैं। तर्कों की कसौटी पर उसे नहीं कसते हैं। जब उस दौर में गंगा के नाम पर तरह तरह की अफवाह उठ रही थी तब उसका खंडन तर्क के सहारे प्रतापनारायण मिश्र गंगा जी की स्थिति निबंध के माध्यम से करते हैं। अफवाह यह थी कि गंगाजी की आयु अब केवल 8 वर्ष शेष रह गई है और दूसरी अफवाह थी कि ऐसी बात नहीं है गंगाजी सदा बनी रहेंगी। इन दो मतों को लेकर हिंदू धर्म में तरह तरह की प्रतिक्रियाएँ आने लगीं और उसने भेदभाव की स्थिति उत्पन्न होने लगी। बाद में प्रतापनारायण मिश्र अपने निबंध में इस उड़ती हुई खबर की तर्कपूर्ण व्याख्या करते हैं और बताते हैं कि यह सब धर्म के ठेकेदारों के फैलाए हुए चोंचले हैं; हमारी एकता को भंग करने की कोशिश है। हमें इस तरह की अफवाहों से बचना चाहिए क्योंकि यह आगे चलकर भ्रामक स्थिति उत्पन्न करेगी और यह दंगा फसाद का एक प्रमुख कारण बनेगी।

इस युग के व्यंग्यकारों ने न केवल हिंदू धर्म बल्कि मुसलमानों के अंदर फैली धर्म संबंधी अव्यवस्था और आडम्बरों पर भी कटाक्ष किया है। भारतेंदु हरिश्चंद्र हिंदू धर्म को संबोधित कर 'वैष्णवता और भारतवर्ष' तथा 'स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन' और 'ईश्वर बड़ा विलक्षण है' नामक निबंध लिखते हैं, तो वहीं मुस्लिम धर्म के संदर्भ में महात्मा मुहम्मद, 'हिंदी कुरान शरीफ' निबंध लिखते हैं। इससे तो एक बात साफ जाहिर होती है कि हिंदू और मुस्लिम धर्म के बीच जो नफरत के बीज बोए गए थे, वह बाद में बोए गए थे और विदेशी आक्रमणकारियों के द्वारा ही यह सब फैलाया गया है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि भारतेंदु युगीन व्यंग्य लेखन में धर्म के विविध स्वरूप, उसकी महत्ता, उसके उचित अर्थ को गढ़ने की कोशिश की गयी है साथ ही उसमें व्याप्त आडंबर आदि का सुंदर तरीके से विवेचन किया गया है। धर्म का सहारा लेकर समाज में उपस्थित विद्रूपता जैसे आलस्य, विलासिता, पाखंड, चाटुकारिता, जादू टोना, बलि, स्त्रियों का शोषण आदि समस्याओं का भी उल्लेख मिलता है जो व्यंग्य की उपस्थिति में और भी निखर कर सामने आता है। धर्म के नाम पर आम जनता पर होने वाला अत्याचार,स्वार्थ सिद्धि के लिए निम्न जाति के लोगों को श्रेष्ठ घोषित करना, अपने अनुसार धर्म और शास्त्रों के नियम में फेरबदल करना आदि का वर्णन इस युग के लेखकों ने किया है। भारतेंदु अपने नाटकों में निम्न वर्ग के पात्रों को शामिल कर उच्च वर्ग के पात्रों के साथ तनाव पैदा कर नाटकीयता उत्पन्न करते हैं और पाठकों का ध्यान आकर्षित करने की कोशिश करते हैं। इस युग के लेखक की भाषा सरल और आमजन की है, जिससे यह आसानी से लोगों तक पहुँच जाती है।

सहायक ग्रंथ सूचीः

1. शम्भुनाथ, भारतेंदु और भारतीय नवजागरण, प्रकाशन संसथान, नई दिल्ली, 2009, पृष्ठ- 76
2. वही
3. वही
4. वही
5. वही, पृष्ठ- 70
6. वीरभारत तलवार- रस्साकसी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृष्ठ- 117
7. सत्य प्रकाश मिश्र(सं)- बालकृष्ण भट्ट प्रतिनिधि संकलन, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, 2012, पृष्ट- 96
8. वही
9. वही, पृष्ठ- 99
10. वही, पृष्ठ- 80
11. विजयशंकर मल्ल- प्रतापनारायण ग्रंथावली, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, सं 2049, पृष्ठ- 403

सहायक अध्यापक,
कृष्णकांत हेंदिक राज्यिक मुक्तविश्वविद्यालय,
सिटी कैंपस- रेशम नगर, खानापारा,
असम, गुवाहाटी- 781022

आत्मकथा

देवयानम्

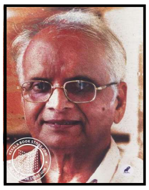

अनुवाद : प्रो. के.एन.ओमना

मूल : डॉ.वी.एस. शर्मा

चौदहवाँ देवपद - कलालोक

(पूर्वप्रकाशित से आगे)

1993 अक्तूबर को केरल संगीत नाटक अकादमी के तत्त्वावधान में मोहिनियाट्टम की जो कार्यशाला संपन्न हुई थी उसके निर्देशक के रूप में मुझे चुन लिया गया था। केरल विश्वविद्यालय के मलयालम विभाग के अध्यक्ष के भारी दायित्वों के साथ मैंने अकादमी की इस महत्वपूर्ण दायित्व को भी निभाया था। श्रीमती भारती शिवजी, श्रीमती कनक रेले, श्रीमती कलामण्डलम सत्यभामा, श्रीमती मृणालिनी साराबाई जैसे देश के विख्यात नर्तकियों ने इस कार्यशाला में सक्रिय भाग लेते हुए इसकी गरिमा बढ़ा दी थी। ठीक इसी मौके पर केरल सरकार ने मुझे केरल कलामण्डलं के अध्यक्ष के पद पर नियुक्त किया था। अपनी कलात्मक प्रतिभा एवं कर्मठता की सरकार की स्वीकृति है यह। इसलिए मेरे लिए यह तो बड़े गर्व तथा संतोष की बात थी। लेकिन अब यह प्रश्न उठा कि विश्वविद्यालय के अध्यापक का काम और केरल कलामण्डलम के अध्यक्ष का पद - दोनों सरकारी काम एक साथ कैसे निभाऊँ? बाद में आदरणीय मंत्री श्री टी एम जेकब से चर्चा करने पर उन्होंने मुझे यह आदेश दिया कि विश्वविद्यालय के प्रतिनिधि-मण्डल (syndicate) की अनुमति से दोनों काम करने में कोई बाधा नहीं है। केरल कलामण्डलम के स्थापक श्री वल्लत्तोल नारायण मेनोन का वर्षगाँठ नवंबर के नौ तारीख को है। इसलिए इस संस्था का वार्षिक समारोह भी निश्चित किया गया है। इस परिस्थिति में आठवीं को ही मुझे कलामण्डलम के अध्यक्ष का काम शुरू करना था। सर्वप्रथम मैंने अपने गुरु पण्डितरत्न श्री नारायण पिषारडी के घर जाकर उन्हें प्रणाम किया और उनके साथ गुरुवायूर जाकर भगवान श्रीकृष्ण का दर्शन किया। उसके बाद में पुण्यनदी निला के किनारे स्थापित केरल कलामण्डलम पहुँचा। सबसे पहले महाकवि की समाधि में मैंने फूलों से उनकी अर्चना की और फिर, दफ्तर में जाकर वहाँ के आलेख्य ग्रंथ (Register) में अपने हस्ताक्षर किए। उस दिन वार्षिक समारोह में केरल के मुख्यमंत्री श्री के करुणाकरन ने कलामण्डलम के पुराने मकान में कलाओं से संबंधित संग्रहालय का उद्घाटन किया था। सभा में सम्मिलित आस्वादको को संबोधित कर मैंने भी वहाँ अपना पहला भाषण दिया था।

केरल कलामण्डलम की प्रशासन परिषद के अंग थे महाकवि का पुत्र श्री सी अच्युत कुरुप्पु, श्री चोव्वल्लूर कृष्णनकुट्टी, श्री पी नारायण कुरुप्पु, सुप्रसिद्ध कथकली संगीतज्ञ श्री शंकरन एम्प्रांतिरी, श्री मात्यू स्टीफन आदि। इनमें श्री नारायण कुरुप्पु को कलात्मक की बहुत बड़ी जानकारी थी। श्री सी अच्युत कुरुप्पु तो कलामण्डलम की ऐतिहासिक बातों के निष्णात थे। श्री मात्यू स्टीफन एम एल ए होने के नाते मंत्री के साथ निकटतम संबंध रखता था; अतः कलामण्डलं के प्रशासनिक बातों में सरकारी सहायता आसानी से उपलब्ध होती थी। अपनी शारीरिक अस्वस्थताओं के बावजूद भी श्री शंकरन एंप्रांतिरी केरल की इस महत्वपूर्ण संस्था के उत्तरोत्तर विकास के लिए दिल खोल कर सहयोग देता था। कलामण्डलम का प्रमुख अध्यापक (Principal) श्री वाषेंकरा विजय तथा दूसरे अध्यापक भी हमारे साथ हमेशा सहयोग देते थे। लेकिन कुछ लोग तो ऐसे नहीं थे। इसलिए दफ्तरी कामों में कभी कभी अडचनें पड़ती थीं। ऐसे मौके पर "लैसन" अध्यक्ष (Laison officer) श्री पी बालकृष्णन नायर मेरी बड़ी सहायता करते थे। एक बार वेतन बढ़ाने के लिए अध्यापकों की हड़ताल हुई थी और स्थिति इतनी बढ़ गई कि मुझे

संस्था को बंद करना पड़ा। उसके बाद मुख्यमंत्री तथा सांस्कृतिक विभाग के मंत्री इन दोनों के साथ चर्चा कर मैंने प्रश्न सुलझाया था। इस प्रकार की कठिन परिस्थितियों में भी अध्ययन-अध्यापन में कोई दिक्कत नहीं आने दी थी। सभी कलाओं का अध्ययन निर्विघ्न चलता रहा। इसके सिवा बाहर से प्रतिष्ठित अतिथि कलाकार (visiting Artists) यहाँ आकर अपने ज्ञान और अनुभव का सार विद्यार्थियों को समझाते थे। इनमें प्रातः स्मरणीय हैं कूटियाट्टम के महान गुरु श्री अम्मन्नूर माधव चाक्यार। हर महीने विभिन्न कलाओं का सार्वजनिक प्रदर्शन (Demonstration) के साथ विशेषज्ञों की वक्तृता भी होती थी। उनमें प्रमुख थे श्री कलामण्डलम केशवन, श्री कलामण्डम रामनकुट्टि नायर, गुरु गोपालकृष्णन इत्यादि। प्रोफेसर श्री के पी नारायण पिषारडी और स्वयं मैं भी विद्यार्थियों को भरत मुनि का नाट्यशास्त्र पढ़ाते थे जो कि हरेक शास्त्रीय नृत्य-नाट्य की आधार-शिला है। सुप्रसिद्ध नर्तकी श्रीमती भारती शिवजी ने मोहिनियाट्टम की कार्यशाला (workshop) में भाग लेकर हमारी विद्यार्थिनियों को अपनी कला की बहुत सारी जानकारी प्रदान की थी। एक बार हम ने अपनी इस संस्था में एक बहुत बड़ा "संगीतोत्सव" भी मनाया था जो कि केरल कलामण्डलम के इतिहास में अपूर्व तथा उज्वल मुहूर्त बन गया था। शास्त्रीय संगीत क्षेत्र के सर्वश्रेष्ठ प्रतिभा-संपन्न महाराजा श्री स्वाती तिरुनाल, श्री त्यागराज स्वामी, श्री मुत्तुस्वामी दीक्षितर और श्री श्यामा शास्त्री की रचनाओं को लेकर इस संगीत का उत्सव मनाया गया था। कलामण्डलम के अध्यक्ष के रूप में दूसरा एक महत्वपूर्ण कार्य मैंने यह किया था कि इस संस्था के आँगन में दफ्तर के बिलकुल सम्मुख महाकवि श्री वल्लत्तोल नारायण मेनोन की एक सुंदर मूर्ति की स्थापना मैंने की जिन्होंने अपने दोस्त श्री मुकुंद राजा के सहयोग से कठोर परिश्रम के फलस्वरूप इस संस्था को स्थापित किया था। केरल की श्रेष्ठ कलाओं का उद्धार एवं प्रचार-प्रसार करना उनका लक्ष्य था जोकि केरल की महत्वपूर्ण संस्कृति का अक्षय भण्डार है। श्री मुकुंद राजा ही इस संस्था के सर्वप्रथम सचिव (secretary) थे जिन्होंने महाकवि के कंधों से कंधा मिला कर इस संस्था को जन्म दिया था। उनका नाम भी चिर स्मरणीय हो; इस उद्देश्य से उनके नाम पर एक स्मृति-उपहार देने का प्रबंध भी मैंने किया और पहला उपहार हम ने श्री डी. अप्पुक्कुट्टन नायर को समर्पित किया था जिन्होंने कलामण्डलम 'कूत्तम्बलम" का (नाट्यगृह) का शिल्प-विधान और निर्माण भी किया था। खेद की बात यह हुई थी कि तब तक उनका निधन हो गया था; इसलिए हमने उनका यह उपहार उनकी धर्म-पत्नी के हाथों सौंप दिया था। (क्रमशः)

उत्तर

1. 101
2. गीतांगिनी
3. भारत दुर्दशा
4. विष्णुप्रभाकर
5. अब्दुल बिस्मिल्लाह
6. शिवकुमार मिश्र
7. चतुरसेन शास्त्री
8. दण्डी
9. श्रेष्ठ मनोरंजन
10. अज्ञेय
11. बंधनमुक्त
12. भवानीप्रसाद मिश्र
13. रीति काव्य
14. डॉ जार्ज ग्रियर्सन
15. विट्ठल नाथ
16. रामानंद
17. चित्रकूट के सोलंकी राजा रुद्र
18. त्र्यंबक वीर राघवाचार्य
19. हेनरी मार्टिन
20. विनोदकुमार शुक्ल

आत्मकथा

ज़िंदगी : एक लोलक

मूल : श्रीकुमारन तंपी

अनुवाद : डॉ.पी.जे.शिवकुमार

बैलगाड़ी में चढ़कर कैतोलेत्तु वेलुप्पिल्लै लौटे। क्या करना है, यह जाने बिना जब चात्तु तंपी दुखी हो गए तब माधवन पोट्टि ने कहा : "बेटा.... नायर ही अच्छा है।" अपने जनेऊ सहलाते हुए वे आगे बोले : आगे इस परिवार में जनेऊधारी जाति के लोगों को प्रवेश मत देना चाहिए... बच्चों को देकर चुपचाप चले जानेवाले पिता आगे इस परिवार में होना नहीं चाहिए।" उनका कथन सार्थक निकला। कैतोलेत्तु वेलुप्पिल्लै का आगमन शुभ ही हुआ। बाद में पुन्नूर परिवार की सारी लडकियों को नायर युवाओं ने ही शादी की थी। जो भी हो इस प्रकार बीस साल की आयु के वेलुप्पिल्लै ने दस साल की आयु की कुञ्ञुकुट्टि तंकच्ची से विवाह किया। बिना देरी के ही कैतोलेत्तु वेलुप्पिल्लै, साला और घर का मुखिया रूपी चात्तुतंपी से भिड गये। पुन्नूर घर के उत्तरी भाग में स्थित अहाता उन्होंने पैसा देकर खरीदा। बहुत जल्दी ही एक हवेली का निर्माण करवाया। करीब पुन्नूर घर की ही शैली में। पर जल्दी घर को पूरा करने के हठ में सिर्फ तहों के लिए ही सागौन की लकड़ी का उपयोग किया था। दीवारों के लिए निहाई का पेड़ और कटहल पेड का ही उपयोग किया था। यहीं मेरे और अपने भाई का पला और बढ़ा हुआ करिंबालेत्तु घर है। देश के किरीट बिन राजा रूपी साला चात्तुतंपी से वेलुप्पिल्लै ने कहा - "आगे मुझसे सतर्कता से बर्ताव करना चाहिए। मैं अब पत्नी के घर में रहता नहीं हूँ। खुद का बनाया अपने घर में हूँ।"

वह करिंबालेत्तु घर ही अब आषाढ़ से डर कर काँपता खडा हुआ है। वेलुप्पिल्लै-कुञ्ञुक्कुट्टी तंकच्ची की पाँच संतानें हैं - कार्त्यायनिक्कुट्टी तंकच्ची, डॉ.पी.सी.पद्मनाभन तंपी, गौरिक्कुट्टी तंकच्ची, वासुदेवन तंपी और भवानिक्कुट्टी तंकच्ची। दादी माँ की अंतिम संतान के रूप में उसकी बयालीसवीं उम्र में जन्मी सबसे छोटी बेटी है मेरी माँ। सबसे बड़ी दादी माँ की सबसे छोटी बेटी और मेरी माँ की उम्र समान थी। माँ और बेटी का एक ही समय गर्भवती होना, निकट के महीनों में जन्म देना, क्या आज हम ऐसी स्थिति की कल्पना कर सकते हैं...?

मेरी माँ जब चार साल की थीं, तब साठ साल की आयु में माँ के पिताजी कैतोलेत्तु वेलुप्पिल्लै की मृत्यु हुई। माँ के दोनों भाई मेरे जन्म होने से पहले मर गए। बडे चाचा डॉ.पद्मनाभन तंपी ने श्रीमूलं असेंब्लि में सदस्य बनने, मंदिर के सामने के वेलक्कुळं नामक तालाब खुदवाने हरिप्पाट्टु ठाउन हॉल बनाने के लिए नेतृत्व देने, किरायेदारों की बेटियों की शादी कराने, व्यापार के बारे में कुछ भी जानकारी न होते हुए भी व्यापार करने आदि के लिए सारी संपत्ति बेचकर खतम करने पर, माँ की संपत्ति पर भी हस्तक्षेप कर उनतालीस की उम्र में अपने द्वारा बाँधे उलझनों से मुक्त होने में असमर्थ होकर मर गए। माँ के सगे बड़े भाई वासुदेवन तंपी चंङ्ङनाश्शेरी एस. बी. कॉलेज के तीसरी बैच में पढ़नेवाले विद्यार्थी थे। बी.ए.

परीक्षा लिखते समय बीस साल की उम्र में दिल का दौरा लगकर मर गया। इस तरह मेरी माँ के लिए अभय स्थान बननेवाले सब अदृश्य हो गए। प्रत्यक्ष में साथ खड़े होकर; प्रेम, सहायता, सांत्वना सब प्रदान करने लायक पति भी माँ की प्रतीक्षा के अनुसार नहीं उभर आया। इसलिए माँ को अपनी बड़ी माँ का पुत्र, आभिचारी, तात्कालिक रूप में परिवार के मुखिया रूपी पी. सी. कुमारन तंपी नामक कठिन हृदयवाले के अभय में जाना पड़ा था। फिर भी तीन हज़ार 'परा' ज़मीन (तीन सौ एकड) 'पुंजा' खेत और अनेक एकड 'विरिप्पु' खेत के मालिक पुन्नूर खानदान के चात्तुतंपी की छोटी भाँजी की ऐसी अवस्था आने का क्या कारण है? एक परिवार के सभी बड़े लोग मिलकर निस्सहाय एक ग्यारह वर्षीय लडकी के साथ की गई धोखे की कथा है यह... बताऊँगा....

प्रति व्यक्ति को प्राप्त संपत्ति के अवशेष

चात्तुतंपी के गौरवशाली दिनों में उनकी बहनों के बीच हुए मतभेद, जलन आदि, आंगिकाभिनय और कुरुकुराहट में सीमित रही। भाई के सामने अपने मोह और दूसरों के दोषों को खुलकर बताने के लिए एक भी बहन ने धैर्य नहीं दिखाया। सारे भाँजे अतिसमर्थ होते हुए भी चाचाजी का विरोध कर दोषी बनने के लिए कोई भी तैयार नहीं हुआ। एक बहन बिना बच्चों के मनोरोगी बनकर मर गई। सबसे छोटी बहन ने शादी तक नहीं की। फिर भी चात्तुतंपी की जानकारी से ही पुन्नूर खानदान के दो परतों में बँट चुका था- पुन्नूर घर एवं करिंबालेत्तु घर। पुन्नूर में रहनेवाली बहन की बेटी है विषवैद्य और आभिचारी रूपी पी.सी. कुमारन तंपी और विभिन्न मंदिरों में मुख्य कार्यकर्ता के रूप में काम करनेवाले वेलायुधन तंपी।करिंबालेत्तु घर में रहनेवाली बहन (मेरी बड़ी माँ) के बेटे थे चित्रकार एवं दंत डॉक्टर रूपी पी.सी.पदेमनाभन तंपी और पी.सी.वासुदेवन तंपी। चारों ने भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में ही काम किया था पर वे चारों अपने गाँव में मशहूर थे। चाचा चात्तुतंपी उनके बारे में सोचकर अभिमान करते भी थे। चात्तुतंपी की पत्नी पतिगृह में ही रहती थी। यही नहीं, वे पति को अपने नियंत्रण में रखने में समर्थ थी। इसी कारण से ही चाची से भानजों का विरोध था। निश्शब्द रूप के झगड़े पति की बहन के साथ हुए होंगे। जो भी हो, चात्तुतंपी की मृत्यु एक बडे परिवर्तन की शुरुआत बनी। पति की अंत्य यात्रा निकट है, यह कुटुंब वैद्य से जानकर चाची ने अपने भाइयों की सहायता से पुन्नूर घर में विद्यमान, उठा ले सकनेवाली सारी कीमती वस्तुओं को अपने खानदान पहुँचायी। चाचाजी के शवदाह के बीतने पर ही सब मिलकर, तब तक महारानी के समान पुन्नूर खानदान में रहनेवाली चाची को घर से निकाल भी दिया।

चार भानजों में उम्र से प्रथम विषवैद्य पी. सी. कुमारन तंपी थे। इस प्रकार वे घर के मुखिया बने। बडे महल और नित्यपूजा करने वाला पारिवारिक मंदिर उनके अधीन हो गए। गरीबों की सहायता करके प्रतिफल न लेकर गरीबों को दंत चिकित्सा करके गाँव में मुखिया बनकर रहे पद्मनाभन तंपी से उनकी बड़ी माँ का पुत्र रूपी कुमारन तंपी को कुछ जलन हुआ होगा। आभिचारी रूपी कुमारन तंपी को भी स्थानीय लोग आदर करते थे। उसका कारण स्नेह नहीं था, आभिचारी के प्रति डर था।

(क्रमशः)

यूणियन बैंक के कर्मचारियों केलिए केरल हिन्दी प्रचार सभा द्वारा आयोजित
हिन्दी-मलयालम कक्षाओं का समापन सम्मेलन और प्रमाण पत्र वितरण

प्रतिरोध दिनाचरण सम्मेलन में सभा के अध्यक्ष और मंत्री भाग ले रहे हैं।

कोषिक्कोड सामूतिरी के.सी. उण्णियनुजन राजा के भौतिक शरीर पर
सभा केलिए प्राचार्य श्रीमती विजया पुष्पांजलि कर रही है।

RNI No. 7942/1966
Date of Publication :15-04-2025
Date of posting : 20th of Every month

KERAL JYOTI

APRIL 2025

Vol. No. 62, Issue No.01
Regn. No. KL/TV(S) 381/2025-2027
Price Rs. 40/-

A monthly Publication of Kerala Hindi Prachar Sabha approved for School Libraries by the Education Dept., Govt. of Kerala as per notification No. B-3 / 4036/83 SIE dated 20-9-1985
Approved by University of Kerala as per order No. Ac. A II / 1 / 31965 / Std. Journals/2013 / dtd : 27-6-2013

राजभवन में केरल के राज्यपाल से मुलाकात

वार्षिकोत्सव में छात्रों के मनोरंजन कार्यक्रम

केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवनंतपुरम-695014 के लिए मंत्री अ.व.डॉ.मधु बी द्वारा प्रकाशित, राष्ट्रवाणी मुद्रणालय, केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवनंतपुरम-695014 में मुद्रित, प्रो.डी.तंकप्पन नायर व डॉ.रंजीत रविशैलम द्वारा संपादित

Published by the Secretary, Adv. Dr. B. Madhu for Kerala Hindi Prachar Sabha, Tvpm-695014 Printed at Rashtravani Mudranalaya, Kerala Hindi Prachar Sabha, Tvpm-695014 & edited by Prof.D.Thankappan Nair & Dr.Renjith Ravisailam